महावीर-निर्वाण का ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष

श्रीगुरु के उपदेश से तत्क्षण अनुभव होता है

अहा, तीर्थंकर के उपदेशानुसार ज्ञानी ने भेदज्ञान समझाया, उसे सुनते ही ज्ञानशक्ति स्वस्वरूप के प्रत्यक्ष अनुभवशीलरूप किसे परिणमित न होगी ?—आत्मा अवश्य सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित होगा, अवश्य स्वरूप का अनुभव होगा; इसलिये सम्यक्त्व तो होगा ही।

धर्मी का अस्तित्व कहीं वाणी में नहीं है, राग में धर्मी का अस्तित्व नहीं है; धर्मी का अस्तित्व तो ज्ञानचेतना में है। उस ज्ञानचेतना में से निकले हुए भावों को जो पहिचाने, उसे शीघ्र भेदज्ञान होगा ही... उसके भाव भी राग से भिन्न चेतनामय हो जायेंगे।

धन्य गुरुदेव! आपने ऐसा स्पष्ट भेदज्ञान कराके तत्त्व समझाया; उसे समझते ही हमारे अंतर में शांतरस के वेदनसहित अपूर्व ज्ञान उत्पन्न हुआ। पहले मानों आत्मा मरा हुआ था, उसका देहरहित अस्तित्व भासित नहीं होता था; अब देह से भिन्न चेतनस्वरूप अपने अस्तित्व का अनुभव करके आत्मा जीवित हुआ है, आत्मा में सम्यग्ज्ञान का अवतार हुआ है। हे गुरु! हम मरे हुए थे, आपने हमें जीवित किया है।

तंत्री-**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2500 चैत्र (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 1

चलो, श्रीगुरु के पावन मार्ग पर चलें....

वैशाख शुक्ला दोज... अर्थात् अपने गुरुदेव की जन्म-जयन्ती का पावन दिवस... भारत भर के मुमुक्षुओं ने आज का दिवस आनंद से मनाया। अहा, स्वामीजी ने जिनमार्ग का रहस्य बतलाकर हम सबको जैन बनाया, अरिहंतों का और संतों का अध्यात्मजीवन कैसा होता है, वह समझाकर जिन्होंने हम सबको अध्यात्मजीवन जीना सिखलाया, मोक्ष की साधना आनंदमय है—ऐसा बतलाकर हमें दु:ख और क्लेश के मार्ग से छुड़ाया और आनंद के मार्ग में लगाया है। आत्मा की आराधना ही इस मनुष्य-जीवन का सच्चा ध्येय है, ऐसा बतलाकर जिन्होंने जीवन के ध्येय की ओर बारंबार प्रोत्साहित किया है; जिसप्रकार कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने अपने परम्परागत गुरुओं के अनुग्रहपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश देकर निजवैभव दिया था, उसीप्रकार जिन्होंने अनुग्रहपूर्वक हम सबको निरंतर शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश देकर अचिंत्य आत्मवैभव दिखलाया है, और जिनका भूत-भविष्य का जीवन हमें तीर्थंकर भगवंतों के प्रति परम भक्ति जागृत कराता है—ऐसे गुरुदेव का जन्मोत्सव मनाते हुए आत्मा उल्लसित होता है, और उनकी मंगल चरण-छाया में शुद्धात्मा की आराधना प्राप्त करके जीवन में अतीन्द्रिय आनंद की मधुर ऊर्मियाँ जागृत होती हैं।

हे गुरुदेव! आपके जीवन में से शुद्धात्मा की आराधना सीखकर उस जीवन का महोत्सव मनाते हैं, आपका कल्याणकारी मंगल आशीर्वाद प्राप्त करके हम धन्य हुए हैं और भारत के समस्त मुमुक्षु आनंद से आपका अभिनंदन करते हैं।

हे मुमुक्षुओं! गुरु-सेवा का सच्चा लाभ लेना हो तो अपने ज्ञान को अचिंत्य महिमावंत शुद्धात्मतत्त्व में जोड़कर उसकी अनुभूति करो, तभी तुम्हें गुरु और गुरु के मार्ग की अपूर्व महानता समझ में आयेगी।

सोनगढ़ : परमागम-प्रतिष्ठामहोत्सव के मधुर संस्मरण

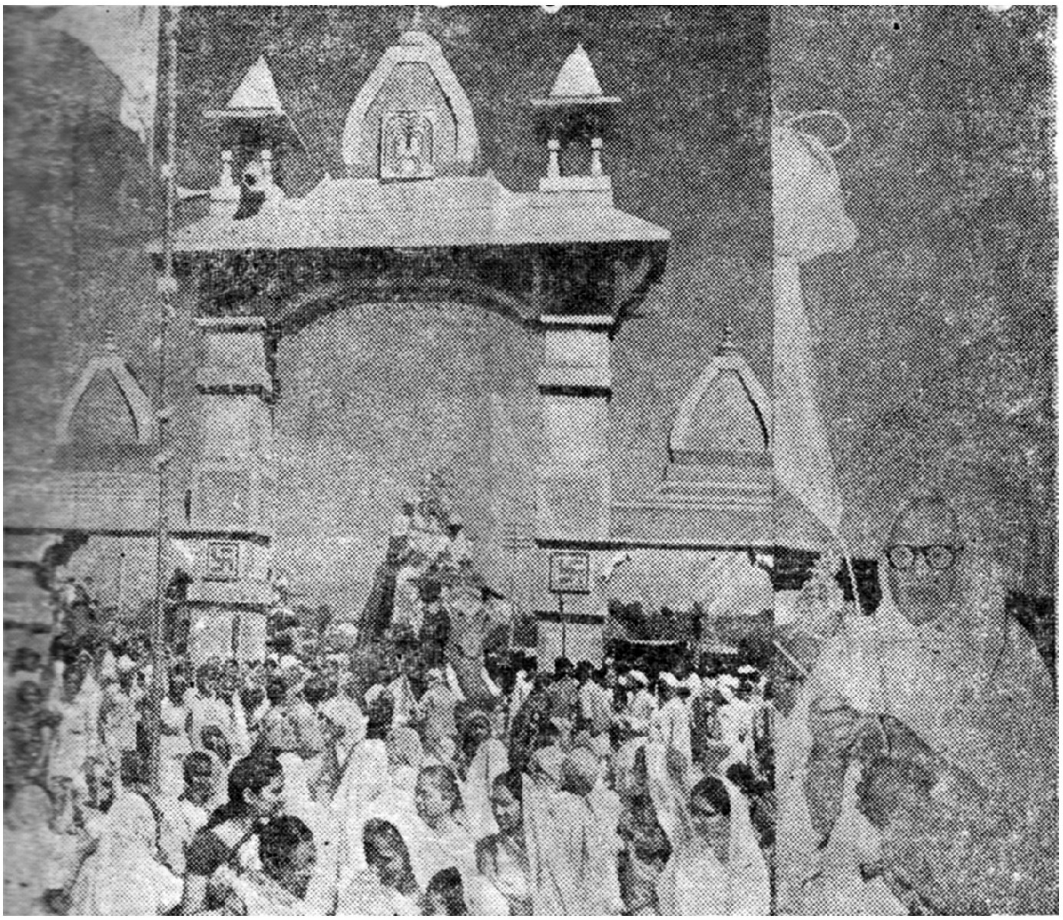

परमागम-प्रतिष्ठामहोत्सव के मंगल प्रारंभ में पूज्य
स्वामीजी जैनध्वज फहरा रहे हैं। महावीर
नगर के भव्य प्रतिष्ठामंडप में जैनधर्मध्वज
लहरा रहा है और प्रांगण में हाथी
प्रवेश कर रहा है।

श्री जिनेन्द्र-दरबार (दरबार तुम्हारा मनहर है....)
उत्सव के अवसर पर प्रतिष्ठा हेु वेदी पर विराजमान जिनबिंब

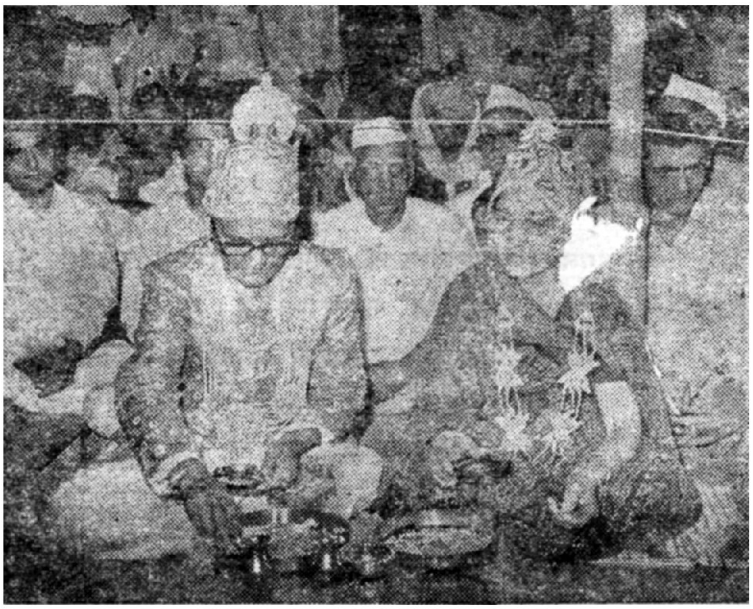

पंचकल्याणक के प्रारंभ में पंचपरमेष्ठी की पूजा में भगवान
के माता-पिता भक्तिपूर्वक भाग ले रहे हैं।

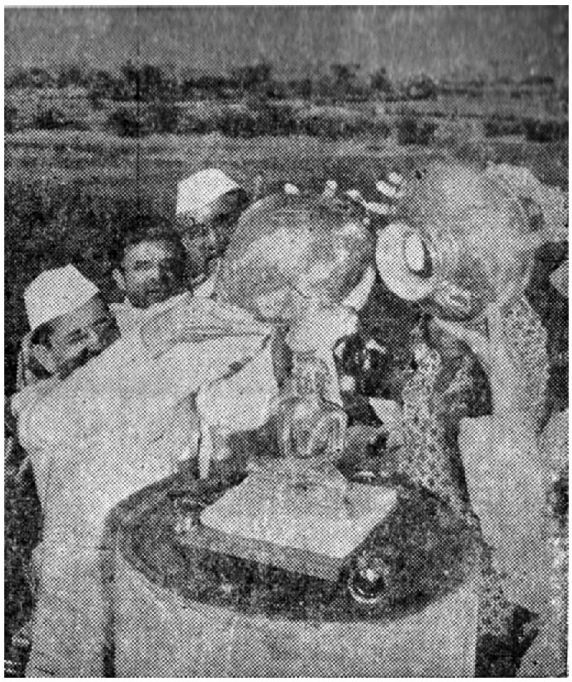

अचेतन-अश्वों द्वारा चलता हुआ अजमेर का भव्य रथ—

— प्रभु के जन्माभिषेक की भव्या यात्रा में चल रहे अचेतन अश्वों के मन में मानों ऐसे विचार उठ रहे हैं कि अहा! प्रभु के मार्ग में चलते हुए हमें-जड़ को ऐसा गौरव मिलता है... तो जो चेतनावन्त जीव प्रभु के मार्ग पर चल रहे हैं—उनके आनन्द और गौरव की क्या बात!

— दूसरे चित्र में श्री पडित बाबूभाई फतेपुरवाले भगवान का जन्माभिषेक कर रहे हैं।

परमागम-मंदिर में वीरनाथ भगवान को देखकर वीतरागता की लहरें उठती हैं

अहा, कैसी भव्य प्रतिमा है! कैसी अद्‌भुत शांत मुद्रा है! परमागम-मंदिर की भव्यता को शोभित करें, ऐसे वीरनाथ भगवान को देखकर हृदय में वीतरागता की लहरें उठती हैं। जिसप्रकार अंतर्दृष्टि करके शुद्धात्मा को जाने तभी परमागम की गंभीरता का यथार्थ ज्ञान होता है, उसीप्रकार जब अंदर आकर तुम वीतरागता के पिंड महावीर-परमात्मा को देखोगे, तभी तुम्हें परमागम-मंदिर की भव्यता का सच्चा ज्ञान होगा। अहा! परमागम में प्रभु सन्मुख बैठे हैं, तब चारों ओर परमागमों में से वीतरागरस की मधुर लहरें उठ रही हैं... दिव्यध्वनि की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है। आओ... परमागम में आकर प्रभु के सन्मुख बैठें... और चैतन्य की अपूर्व शांति का स्वाद ग्रहण करें।

(आत्मधर्म के संपादक ब्रह्मचार श्री हरिलाल जैन हृदय की ऊर्मि सहित महावीर प्रभु के दर्शन कर रहे हैं।)

पूज्य स्वामीजी की 85वीं जन्म-जयंती के अवसर पर

85 चैतन्य-रत्नों की मंगल-माला

राग से भिन्न चैतन्यभाव को प्रसिद्ध करके भारतभर में भेदज्ञान की भेरी बजानेवाले पूज्य स्वामीजी की 85वीं जन्म-जयंती का मंगल-उत्सव बम्बई नगरी में मुमुक्षुओं ने आनंदपूर्वक मनाया। इस आनंद में साथ देने हेतु पूज्य स्वामीजी द्वारा बम्बई, राजकोट, भावनगर तथा सोनगढ़ में दिये गये मंगल-प्रवचनों में से चुने हुए 85 पुष्पों की मंगल-माला यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, यह मंगल-माला मुमुक्षुओं के हृदय में आनंद का सौरभ प्रसारित करेगी। [संपादक]

❁ जगत में सबसे सुंदर ऐसा चैतन्यतत्त्व-स्वद्रव्य है, वह स्वद्रव्य आनंदरूप है; उसका आश्रय करनेवाले जीव मंगलरूप हैं। ऐसे मंगलकारी मंगल आत्मा गुरुदेव जयवंत वर्तो!

1. आनंदमय चैतन्यतत्त्व के आश्रय से जो कार्य होता है, वह कार्य शुभराग के

आश्रय से या परद्रव्य के आश्रय से भी नहीं हो सकता। इसलिये स्वतत्त्व को जानकर उसका आश्रय करो।

2. मोक्षसाधना का महान कार्य शुद्ध स्वद्रव्य के आश्रय से ही होता है; वह कार्य किसी दूसरे के आश्रय से नहीं हो सकता, इसलिये स्वद्रव्य ही सबसे उत्तम और इष्ट है।

3. आत्मा को अकषायी शांति इष्ट है। अकषाय-शांति के वेदन के समक्ष तो प्रशस्तराग का कषायकण भी अशांतिरूप-क्लेशरूप-अग्निरूप प्रतीत होता है। तीव्र-कषाय के वेदनवाले जीव को मंद कषाय अग्निसमान नहीं लगता, परंतु कषायरहित शांति का जिसे वेदन है, उसे तो मंद कषाय भी अग्नि समान लगता है। 'शांति' और 'राग' इन दोनों के वेदन में 'शीतलता' और 'जलन' जितना अंतर है... एक में आत्मा शीतल होता है और दूसरे में जलता है।

4. हे गुरुदेव! दु:खमय ऐसे पंचम काल में भी, शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश द्वारा आपने तो हमारे लिये आत्म-आराधना का आनंदमय उत्तम काल बना दिया है। आपके आत्मा का यह एक आश्चर्यकारी चमत्कार है।

5. आनंद का नाथ आत्मा जागृत हो और भव-दु:ख का अंत आये—ऐसी यह बात है। भाई, तेरा आत्मा सर्वथा अंतर्मुख है; अंतर की गहराई में उतरने पर राग-द्वेषरहित चैतन्यतत्त्व सुखसहित प्रकाशमान है; उसका वेदन होने पर सांसारिक किसी भी सुख की इच्छा नहीं रहती। ऐसा तत्त्व धर्मात्मा को गोचर है, उसकी हे जीव! तू रुचि कर।

6. अहा, स्वामीजी के प्रताप से वर्तमान में पंचम काल में भी हम सबको बारंबार जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणक देखने को मिलते हैं। अभी तो हम सब स्थापना-निक्षेपरूप पंचकल्याणक देख रहे हैं, और अल्प काल में विशेष आराधक भाव सहित साक्षात् भावरूप पंचकल्याणक प्रत्यक्ष देखेंगे। धन्य होगा वह अवसर!

('तीर्थंकरों का अचिंत्य प्रभाव जयवंत हो!')

7. समुद्र में से रत्न प्राप्त करने के लिये उसकी गहराई में उतरना पड़ता है, उसीप्रकार चैतन्यसमुद्र अनंत गुण के रत्नों से भरपूर है, उसका वेदन करने के लिये पुण्य-पाप से पार होकर उसमें अंतरोन्मुख होना चाहिये। शुभाशुभ द्वारा उसकी प्राप्ति नहीं होती।

8. आत्मा काहे का बना होगा ? तो संत कहते हैं कि अहा, आत्मा तो आनंद का बना हुआ है, सुख का बना हुआ है, शांति का बना हुआ है। 'बना है' अर्थात् कहीं नया नहीं बना है परंतु स्वयं उस स्वरूप ही है। उसमें उतरने पर आनंद के मोती हाथ आते हैं—अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है।

9. राग के मैल पर चैतन्य का रंग नहीं चढ़ता। अंतर्मुख हुई रागरहित शुद्ध उपयोगरूपी स्वच्छ भूमि उसमें चैतन्य का रंग चढ़ता है, और चैतन्य का रंग चढ़ने पर उसमें अनंत गुण के आनंद का अपूर्व स्वाद वेदन में आता है। भाई, तू राग के रंग में रंग गया, इसलिये तुझे चैतन्य का मधुर स्वाद नहीं आया।

10. ज्ञानी धर्मात्मा दूसरे ज्ञानी-गुरु की दशा को भी पहिचान लेते हैं, उनके अंतर में

आनंद की कैसी दशा है ? उनका ज्ञान कैसा है ? उनकी शांति कैसी है ? उसे धर्मात्मा पहिचान लेते हैं।

11. श्रीगुरु के उपदेश से जैसे अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव मुझे हुआ है, वैसे अतीन्द्रिय आनंद का देव-गुरु विशेषरूप से अनुभव कर रहे हैं—ऐसे स्वसंवेदनप्रत्यक्षपूर्वक धर्मी जीव देव-गुरु को पहिचान लेते हैं—कथंचित् वे देव-गुरु क्षेत्र-अपेक्षा दूर हों, या बहुत वर्ष पहले हो चुके हों, तथापि वर्तमान में अपने स्वसंवेदन के सामर्थ्य द्वारा देव-गुरु की अंतरंगदशा को धर्मी जीव पहिचान लेते हैं।

12. नियमसार की 77-78-79-80-81 इन पाँच गाथाओं को मुनिराज ने पाँच रत्न कहा है, जिन रत्नों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसे यह मूल्यवान पाँच रत्न हैं। इन पाँच गाथाओं में जैसा शुद्धात्मा बतलाया है, उसे वैसा जानने पर अवश्य आत्मा का महान आनंद और सिद्धपद प्राप्त होता है।

13. अहा, इन पाँच गाथाओं द्वारा जो आचार्यदेव ने आत्मा के अनुभव की वीणा बजाई है.. इस वीणा में से आत्मा के आनंद के स्वर निकलते हैं। जिन्हें सुनकर शुद्धात्मा के अनुभव की मधुरता से मुमुक्षु आत्मा डोल उठता है।

14. भेदज्ञान द्वारा ज्ञान और राग का जिसने भंग किया है ऐसे धर्मात्मा भेदज्ञानी जानते हैं कि राग मेरे स्वभाव से दूर रहनेवाला है। मेरी चैतन्य चेतना में राग का स्पर्श शोभा नहीं देता, राग से मेरी चेतना भिन्न ही रहती है। भाई! अपनी चेतना में राग का स्पर्श होने देगा तो तेरी चैतन्यसम्पदा लुट जायेगी—नष्ट हो जायेगी।

15. अहा, अनुभूतिस्वरूप आत्मा तो सदा चेतनरूप ही वेदन में आता है, परंतु अज्ञानी राग के वेदन को अपना वेदन मानकर, अपने स्वसंवेदन से भ्रष्ट हो रहा है। अरे, राग तो चेतना से विरुद्ध कार्य करनेवाला है। राग का कार्य अशुद्ध है, दुःख है और चेतना तो दुःखरहित, शुद्ध है, शांतिरूप है।—ऐसी भिन्नता जानकर जब जीव अपने स्वरूप को चेतनारूप अनुभव करता है, तब उसे साध्य की सिद्धि होती है अर्थात् मोक्षमार्ग प्रकट होता है।

16. भाई! यह तेरे मोक्ष का मार्ग संत तुझे बतलाते हैं। जगत के मार्ग से वह भिन्न है। विकल्प के-राग के मार्ग से अपने आत्मा को हटा और चैतन्यमार्ग में लगा तो तुझे अपने में ही अपूर्व शांति का समुद्र दिखायी देगा। अरे, शांति के भंडार चैतन्य-राजा को पहिचानकर उसकी सेवा कर, तो अपूर्व शांति मिले बिना न रहेगी।

17. आत्मा का अनुभव कैसे करना? कि ज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके, ज्ञान को इन्द्रियों से पार करके, ज्ञानस्वभाव सन्मुख होने पर विज्ञानघन आनंदमय प्रभु आत्मा प्रगट अनुभव में आता है। विकल्प में खड़े रहकर वह अनुभव में नहीं आता।

18. विकल्प से पृथक् हुआ अतीन्द्रिय स्वसंवेदनज्ञान, उसमें आत्मतत्त्व प्रगटरूप से अनुभव में आया है, उसे ही सारभूत समय कहते हैं, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद आदि अनंत आत्मभावों का समावेश है; वही पक्षातिक्रांत है।

19. उस अनुभव में सम्यक् मति-श्रुतज्ञान हैं; मति-श्रुतज्ञान होने पर भी उनकी कितनी अतीन्द्रिय शक्ति है! उसकी अज्ञानी को प्रतीति नहीं होती। वे मति-श्रुतज्ञान इन्द्रियरहित और रागरहित कार्य करनेवाले हैं।

20. अरे, जातिस्मरणज्ञान होने पर भी श्रेयांसकुमार ने असंख्य वर्ष पहले की बात जान ली कि इस जीव के साथ पूर्वभव में मेरा ऐसा संबंध था। शरीरादि संयोग बदल जाने पर भी ज्ञान की शक्ति द्वारा जान लिया कि पूर्व में जो वज्रजंघ राजा थे, वही जीव यह ऋषभदेव है। बाह्य में कोई चिह्न न था, तथापि ज्ञान के सामर्थ्य से वह जान लिया। एक परसन्मुख-परोक्ष मतिज्ञान में जातिस्मरण की भी इतनी शक्ति है! तब इन्द्रियों से पार प्रत्यक्ष-स्वसन्मुख अतीन्द्रिय स्वसंवेदन ज्ञान की अगाध शक्ति का तो क्या कहना? अंतरोन्मुख हुआ ज्ञान अपने परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है।—वह ज्ञान मोक्ष के द्वार खोल देता है।

21. स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष में अपने समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को आत्मा जानता है; पूरे आत्मा को स्व-ज्ञेयरूप जानता है। अरे, ऐसे स्वज्ञेय को जानने का काम जो न करे, और राग के कार्य में रुक जाए, वह ज्ञान आत्मा को कहाँ से साधेगा? और

उसे सच्चा ज्ञान कौन कहेगा? सच्चा ज्ञान तो उसे कहा जाता है कि जो राग से भिन्न ऐसे शुद्ध आत्मा को स्व-ज्ञेयरूप से प्रसिद्ध करे।

22. श्रेयांसकुमार ने ऋषभ मुनिराज को आहारदान देने का शुभभाव किया, उसे लोग देखते हैं, परंतु उस दान के शुभराग के समय उस राग से पार आत्मा का अनुभव करनेवाला अतीन्द्रिय ज्ञान उनके वर्तता था, उस ज्ञान की अगाध शक्ति को ज्ञानी ही जानते हैं। दान के शुभभाव के कारण कहीं उन्होंने मोक्ष प्राप्त नहीं किया परंतु उस समय ज्ञान से भिन्न ज्ञान द्वारा अतीन्द्रिय आनंद की प्रतीति करके उसके प्रताप से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया है।

23. ज्ञान को नहीं जाननेवाले अज्ञानी जीव बाह्य क्रिया को या शुभराग को पकड़कर उसी को मोक्ष का कारण मान बैठे हैं, और अंतर के सत्यज्ञान का (अर्थात् जो सच्चा मोक्षमार्ग है, उसका) निषेध कर रहे हैं। ऐसे जीवों पर ज्ञानी को करुणा आती है; इसलिये ज्ञानमय सच्चा मोक्षमार्ग ज्ञानियों ने प्रसिद्ध किया है। अहा, ऐसे मोर्ग में तो अतीन्द्रिय आनंद की तरंगें उल्लसित होती हैं।

24. अहा, चैतन्यरत्न के आनंदनिधान का तो क्या कहना? जगत के पुण्य का भंडार दे दे, तथापि जिसका मूल्यांकन न हो सके... अरे! जिसकी झलक भी न आ सके ऐसा अगाध महिमावंत यह चैतन्यरत्न है। हाँ, स्वतत्त्व की ओर उन्मुख हुए सम्यक्मति-श्रुतज्ञान द्वारा उसकी अगाध महिमा साक्षात् अनुभव में आती है। अन्य किसी भाँति चैतन्यरत्न हाथ में नहीं आता।

25. यदि तुझे वास्तव में सुखी होना हो, सिद्धपद के मार्ग पर आना हो, तो सर्व प्रथम स्वसन्मुख होकर ज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचान कर—ऐसा वीतरागी संतों का उपदेश है।

26. प्रथम विकल्प और राग द्वारा मार्ग प्राप्त होगा-ऐसा नहीं है। स्वसन्मुख हुआ ज्ञान स्वयं आनंद में तन्मय होकर आनंद का अनुभव करता है। आनंद किसी को हो और ज्ञान किसी दूसरे को हो—ऐसा नहीं होता। अभेद अनुभूति में ज्ञान-आनंद आदि अनंत भावों का वेदन एक साथ होता है।

27. यह मोक्षार्थी जीव की बात है। भाई, इस जीवन में मुझे अपना कल्याण करना ही है—ऐसी अंतर की तीव्र आत्मजिज्ञासापूर्वक चैतन्य की महिमा का मंथन करते-करते तेरे निर्णय में ऐसा आयेगा कि अहो! मैं ही स्वयं परिपूर्ण ज्ञान-आनंदस्वरूप हूँ; ऐसे निर्णय के बल द्वारा अंतर्मुख होने पर प्रत्यक्ष स्वसंवेदन द्वारा आत्मअनुभव होता है, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा परमात्मा के मार्ग पर चलने लगा... महावीर के मार्ग पर चलने लगा।

28. आत्मसाधना करते-करते बीच में साधक भूमिका में राग द्वारा तीर्थंकरनामकर्म बँधा, फिर राग का नाश करके केवलज्ञान होने पर वह तीर्थंकरप्रकृति उदय में आयी, तब दिव्यध्वनि में भगवान ने वीतरागता का उपदेश दिया, आत्म-साधना किस प्रकार करना वह बतलाया। वह बात समयसार की 17-18वीं गाथा में आचार्यदेव ने बतलाई है।

29. प्रथम तो आत्मा को चैतन्यस्वरूप जानकर उसकी श्रद्धा करना कि जो चैतन्यभावरूप अनुभव में आता है, वही मैं हूँ; चैतन्य से भिन्न अन्य भाव सो मैं नहीं हूँ।—ऐसा भेदज्ञान करके निःशंक श्रद्धा करे, वही जीव चैतन्यस्वरूप में निःशंकरूप से स्थिर रहकर उसे साध सकता है।

30. हे मुमुक्षु! तेरा सबसे पहला कार्य यह है कि चैतन्यराजा को पहिचान! पहिचानकर उसकी सेवा करने पर (-अर्थात् श्रद्धा तथा एकाग्रता करने पर) अपना आनंदमय आत्मा अनुभव में आयेगा।

31. राग का खेल छोड़कर तुझे आनंद का खेल खेलना हो तो तू आत्मा को ज्ञानस्वरूप जानकर अनुभव में ले। भाई! तेरे आनंद का मार्ग राग से और जगत से भिन्न है। अनन्त आनंद का समुद्र अंतर में है, उसमें से आनंद का प्रवाह बाहर (अनुभव में) आये, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है।

32. समयसार अर्थात् आत्मा की कथा! आत्मा का जैसा स्वरूप है, वैसा यह समयसार बतलाता है। जिसप्रकार 'मिश्री' शब्द मिश्री वस्तु को बतलाती है, परन्तु मिश्री वस्तु तो उस वस्तु में है, 'मिश्री' ऐसे शब्द में वह वस्तु नहीं है;

उसीप्रकार आत्मवस्तु को बतलानेवाला यह समयसार है, परन्तु आत्मवस्तु तो अपने ज्ञानस्वरूप में है, 'समयसार' के शब्दों में वह वस्तु नहीं, समयसार तो उसका वाचक है। वाच्यरूप वस्तु आत्मा तो अपने अन्तर में है।

33. ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा केसे करना, आराधना कैसे करना, उसका यह उपदेश है। ज्ञानरूप होकर ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा होती है। राग द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा की उपासना-सेवा नहीं होती।—ऐसा श्रीगुरु ने कहा है।

34. अब, जिज्ञासु शिष्य इतना तो समझा है कि श्रीगुरु मुझे देह और राग से परे ऐसे ज्ञान की सेवा करने को कहते हैं; राग या पर की सेवा द्वारा कल्याण होना श्रीगुरु नहीं कहते।

35. इतना लक्ष में लेकर, अब ज्ञान की सेवा को उत्सुक हुआ शिष्य पूछता है कि प्रभो! आपने ज्ञान की सेवा करने को कहा, परन्तु आत्मा तो सदैव ज्ञानस्वरूप है ही! स्वयं ही ज्ञानस्वरूप है, फिर ज्ञान की सेवा करना कहाँ रहा? नित्य ज्ञानस्वरूप का सेवन तो वह करता ही है; ज्ञान से आत्मा भिन्न नहीं है।—तो फिर ज्ञान की सेवा का उपदेश किसलिये कहते हो?

36. जिज्ञासु शिश्य के ऐसे प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! यद्यपि आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है,—परन्तु ज्ञान बिना वह उसके ज्ञान का एक क्षण भी सेवन नहीं करता, रागादि का ही अपनेरूप सेवन करता है। ज्ञान की सेवा तो तब हो, जब ज्ञानस्वरूप आत्मा को राग से भिन्न जानकर स्वयं वैसी ज्ञान-पर्यायरूप परिणमित हो। श्रीगुरु के उपदेशपूर्वक भेदज्ञान करके जीव ज्ञान की सेवा करता है। अथवा उपदेश प्राप्त करने के पश्चात् निसर्ग से-स्वयं ज्ञानरूप परिणमित हो, तब वह ज्ञान का सेवन करता है। ऐसे भेदज्ञान के पूर्व तो जीव अज्ञानी ही है, वह ज्ञान का सेवन नहीं करता।

37. ज्ञानस्वरूप आत्मा के समीप आकर, उसमें अंतर्मुख होकर, उसमें तन्मय परिणमित होने पर ही ज्ञान की सेवा होती है। वही सर्व श्रुत का सार है, वही सर्व संतों की शिक्षा है, वही आत्मा को साधने की रीति है। जैन-सिद्धांत की यह सर्वोच्च बात है।

38. आत्मा का अनुभव करके वीतरागी संत उसकी रीति जगत को बतलाते हैं। ज्ञान की सेवा, वह नवीन शुद्ध पर्याय है। वह पर्याय (अर्थात् मोक्ष का मार्ग) संतों के उपदेशरूप अधिगम से, अथवा उपदेश प्राप्त करके फिर निसर्ग से,—इसप्रकार कारणपूर्वक वह ज्ञानसेवारूप कार्य होता है। 'आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है'—ऐसा जिसने वास्तव में जाना, उसकी ज्ञानपर्याय ज्ञानसन्मुख हो गई और राग से पृथक् हो गई, तभी उसने ज्ञान की सेवा की है।

39. आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ऐसा पहले नहीं जाना था, और अब श्रीगुरु के उपदेशपूर्वक वह जाना है; इसलिये नित्य ज्ञानस्वभाव और उसकी ओर झुकी हुई अनित्य ज्ञानपर्याय—वे दोनों तद्रूप अभेद अनुभव में आये; जब ऐसा अनुभव किया तब जीव ने ज्ञान की सच्ची सेवा की; तभी उसने ज्ञान की सच्ची उपासना की, तभी वह भगवान के मोक्षमार्ग में आया।

40. इसप्रकार यदि जीव एकक्षण भी ज्ञान की सेवा करे तो उसका अपूर्व कल्याण हो जाये। और ऐसे ज्ञान की सेवा के बिना अन्य लाखों उपाय से जीव का कल्याण नहीं हो सकता।

41. अरे जीव! तू ज्ञाता होकर ज्ञाता को जान! पर को जानने की जो उत्सुकता करता है, वह छोड़ और पर को जानने की आँख बन्द करके, स्व को जानने के लिये हजार सूर्य समान ज्ञानचक्षु को खोलकर अंतर में देख! तो अपना अद्भुत ज्ञानस्वरूप तुझे दिखायी देगा और तेरा जन्म-मरण मिट जायेगा।

42. अहा, इस 'ज्ञान की सेवा' में ज्ञानस्वरूप शुद्धद्रव्य और शुद्धपर्याय दोनों आ जाते हैं। शुद्धद्रव्य और शुद्धपर्याय (अर्थात् नित्य और अनित्यस्वरूप आत्मा) उसके स्वीकार बिना ज्ञान की सच्ची सेवा नहीं हो सकती, इसलिये धर्म या मोक्षमार्ग नहीं हो सकता।

43. अंतर्मुख हुई ज्ञानपर्याय के बिना नित्य ज्ञानस्वरूप की सेवा की किसने? केवल नित्य स्वयं अपनी सेवा नहीं करता; सेवापना तो अनित्य-पर्याय में होता है, और वह पर्याय या तो निसर्ग या अधिगम ऐसे कारणपूर्वक प्रगट होती है। उस कारण

का जिसे स्वीकार नहीं है, पर्याय का जिसे स्वीकार नहीं है, उसे ज्ञान की सेवा प्रगट ही नहीं हुई।

44. राग से जो लाभ मानता है, उसने ज्ञान की सेवा ही नहीं की, उसने आत्मा को ज्ञानस्वरूप जाना ही नहीं। ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानकर उसके सन्मुख हुआ, वहाँ तो अपूर्व आनंद का अनुभव होता है; उस आनंद सहित ज्ञान की सेवा होती है।

45. ज्ञान की इसप्रकार सेवा करनेवाले जीव को अपनी पर्याय में अनादिकालीन आनंद का अकाल मिटकर, आनंद का सुकाल हो जाता है... पर्याय में आनंद की वृद्धि हो जाती है।—उसने ज्ञान की सेवा की, उसने भगवान और गुरु की आज्ञा मानी, उसने ज्ञान का अनुभव किया। गुण-गुणी का उसने एकरूप अनुभव किया, द्रव्य-पर्याय के भेद मिटाकर उसने अभेद का अनुभव किया। यह जैनशासन का रहस्य है; यह वीतरागी संतों का उपदेश है।

46. आत्मा और उसकी ज्ञानपर्याय अभेद है और राग के साथ उसे भेद है,—ऐसा भेदज्ञान और ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप आत्मा को जानकर श्रद्धा करना, वह धर्मात्मा का प्रथम कर्तव्य है। मुमुक्षु को मोक्ष के लिये नियम से जो कर्तव्य है, वह राग से भिन्न आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है, और वही मोक्षमार्ग है।

47. अनादि का अप्रतिबुद्ध शिष्य विरक्त गुरु के उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर आत्मा का स्वरूप समझा; वह कैसा स्वरूप समझा? उसकी इसमें बात है। अहो, अपने स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष ऐसा मैं श्रीगुरु के उपदेश से अपना स्वरूप समझा; अपने परमेश्वर को मैंने अपने में ही देखा। मैं अपने को चेतनास्वरूप से एकरूप अनुभवता हूँ। मेरी इस अनुभूति में भेद के विकल्परूप कारक नहीं हैं अर्थात् अशुद्धता नहीं है, शुद्ध चैतन्यभावरूप ही मैं अपने को अनुभवता हूँ।

48. अरे, एकबार अंतर की जिज्ञासापूर्वक सुने तो जीव की जीवन-दिशा बदल जाये।—ऐसी सुंदर चैतन्य की बात संत सुनाते हैं। राग से पार चिदानंद तत्त्व लक्षगत होने पर, पर के प्रेम की दिशा छूट जाती है और स्वतत्त्व की ओर उसकी

रुचि झुक जाती है। एकबार श्रवण करते ही अंतर में राग और ज्ञान की भिन्नता की चोट लग जाना चाहिये। भाई! एकबार अपूर्व महिमा लाकर अपने आत्मा की बात तो सुन।

49. अहा, अपनी चैतन्यनिधि को, श्रीगुरु के उपदेश से सावधान होकर अब मैंने देखा। मेरा निधान मेरे हाथ में आ गया। अनादि का अज्ञानी होने पर भी, ज्ञानी गुरु के उपदेश से एक क्षण में निजस्वरूप को समझकर प्रतिबुद्ध हो गया। बर्र का डंक लगते ही जिसप्रकार इल्ली बर्र बन जाती है, उसीप्रकार श्रीगुरु के शुद्धात्म उपदेश की चोट लगते ही अप्रतिबुद्ध आत्मा शीघ्र प्रतिबुद्ध हो जाता है। श्रीगुरु ने जहाँ आनंदसागर आत्मा की बात सुनायी, वहाँ उसके प्रेम का रंग चढ़ गया है; ऐसा रंग चढ़ गया कि राग की प्रीति अब नहीं रहती। एक ही प्रहार से राग और ज्ञान के दो टुकड़े हो गये; और भान हुआ कि 'यह रहा मैं चेतनरूप भगवान!'

50. जिसप्रकार भूले हुए सुवर्ण को अपनी ही हथेली में देखकर जीव प्रसन्न होता है, उसीप्रकार अनादि से भूले हुए अपने परमेश्वर आत्मा को अपने में ही देखकर जीव आनंदित हुआ—प्रसन्न हुआ, कि "अहा, मैं परमेश्वर अपने में ही हूँ! अपने स्वसंवेदन में प्रतापवन्त वर्तता हूँ।"

51. अहा! मेरा चैतन्यतत्त्व, अपनी प्रभुता से पूर्ण है; मेरी प्रभुता किसी संयोग या राग के कारण नहीं है। स्वयं अपने स्वभाव से ही मैं परमेश्वर हूँ।—ऐसा स्वसंवेदन धर्मी को चौथे गुणस्थान से हो जाता है।

52. भगवान! अपनी प्रभुता की बात उमंग से सुन तो सही। प्रभुता को जानकर उसका उल्लास करने पर तुझे राग का उल्लास छूट जायेगा और तेरे भव के बंधन टूट जायेंगे।

53. जिसे राग की रुचि है, उसे आत्मा दिखाई नहीं देता; परन्तु भेदज्ञानी जीव राग को पृथक् करके शुद्ध चैतन्यरस का स्वाद लेकर स्वसंवेदन में आत्मा को देखता है। भेदज्ञान के बल से वह शरीर, कर्म और राग से अत्यन्त भिन्न चैतन्यतत्त्वरूप

स्वयं अपने को अनुभवता है। उस चैतन्य के समक्ष राग आदि का कुछ भी मूल्य नहीं है।

54. चैतन्य के स्वसंवेदन से जहाँ ज्ञान की मंगल दोज उगी, वहाँ पूर्णता होते देर नहीं लगती। जिसप्रकार दोज उगी, वह बढ़कर तेरह दिन में पूनम होती है; उसीप्रकार आत्मसन्मुख होने पर शुद्धोपयोग की दोज उगी, वह वृद्धिगत होकर अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करती है।

55. वैशाख शुक्ला दोज के मंगल-प्रवचन में चैतन्य की प्रसन्नता से स्वामीजी कहते हैं कि—अहा, जहाँ ज्ञान और राग का भेदज्ञान किया कि ज्ञानवेदन वह मैं, और रागादि वह मैं नहीं—ऐसा भेदज्ञान करने पर स्वसंवेदन में स्वयं अपने को प्रत्यक्ष हुआ, और परिणमनचक्र मोक्ष की ओर चला, वही साधकभाव का अपूर्व महोत्सव है।

56. भाई, ऐसा मनुष्यपना और ऐसा सत्संग पाकर चैतन्य का अनुभव करनेयोग्य है, यह कार्य पहले कर।

57. धर्मी जीव स्वसंवेदन से अपने को ऐसा अनुभवता है कि मैं तो चैतन्यज्योतिरूप आतमराम हूँ। धर्मात्मा के उपदेश ने उसके मोह को छेदने के लिये रामबाण जैसा काम किया है।

58. धर्मात्मा गुरु ने जैसा कहा था, वैसा स्वरूप लक्ष में लेकर स्वयं अनुभव किया। उस अनुभव के समय मति-श्रुतज्ञान भी अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष हुए हैं। मति-श्रुतज्ञान एकांत परोक्ष नहीं हैं, स्वसंवेदन में वे प्रत्यक्ष भी हैं। ऐसी प्रत्यक्ष ज्ञानकला वह मोक्ष का साधन है।

59. सम्यक्त्व तो आत्मा में एकत्वबुद्धि करके निर्विकल्प प्रतीतिरूप वर्तता है। उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष, ऐसे भेद नहीं हैं। धर्मी को ज्ञान का उपयोग अंतर में हो या बाहर, अशुभ में हो या शुभ में, परंतु सम्यक्त्व तो निरंतर आत्म-प्रतीतियप में वर्तता है।

60. धर्मी का मति-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को बुलाता है—अर्थात् अंतर के स्वसंवेदन

द्वारा ज्ञानस्वभाव को प्रत्यक्ष करके उसने केवलज्ञान के साथ संधि की है। केवलज्ञानस्वभाव, वह अवयवी है, और मति-रुत उसका अवयव है। ऐसा ज्ञान जहाँ प्रगट हुआ, वहाँ ज्ञानदोज उगी, वह अब केवलज्ञानरूप पूर्णिमा होगी ही।

61. आज तो आनंद का दिन है और आनंद का भोजन परोसा जा रहा है; हजारों श्रोताजन उल्लासभाव से उसे ग्रहण कर रहे हैं। सम्यग्ज्ञान की दोज आत्मा के अपूर्व आनंद सहित प्रगट होती है।

62. भाई! चैतन्यतत्त्व की ऐसी बात सुनने को मिलना, वह महान दुर्लभ है; वह तुझे महाभाग्य से मिली है, इसलिये उसे ध्यान से सुनकर आत्मा का कल्याण कर। आत्महित के लिये तुझे यह सुअवसर मिला है... उसे सफल बना।

63. वैशाख शुक्ला तीज को भावनगर के जिनमंदिर में भगवान की प्रतिष्ठा का पाँचवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ। उसी दिन गुरुदेव बम्बई से भावनगर पधारे और प्रवचन में समयसार का 138वाँ कलश पढ़ते हुए कहा कि—

आत्मा चैतन्यतत्त्व स्वयं आनंद का धाम है। ऐसे आत्मा की प्रतीति बिना, धन-संपत्ति के बीच भी जीव अशांति का अनुभव करके चार गति में भ्रमण करता है। शुभाशुभभाव करके जीव ने चारों गतियों में जन्म धारण किया है—कभी बड़ा राजा हुआ और कभी गरीब भिखारी भी हुआ—परंतु चैतन्य की शांति उसे कहीं प्राप्त नहीं हुई।

64. यहाँ आचार्यदेव ऐसे अज्ञानी जीवों को संबोधन करके जागृत करते हैं और उनका चैतन्यपद कैसा सुंदर है, वह बतलाते हैं। अरे जीवो! रागादिभाव वह तुम्हारा सच्चा पद नहीं है, तुम्हारा निजपद तो अंतर में शुद्ध चैतन्य का बना हुआ है, उस चैतन्यपद में रागादि का प्रवेश नहीं है।

65. ऐसे निज चैतन्यतत्त्व को जो नहीं देखते, वे भले देव हों या राजा हों, परंतु आचार्यदेव कहते हैं कि वे जीव अंध हैं। निजनिधान अपने में भरा हुआ है, उसे नहीं देखनेवाले जीव अंधे हैं। भाई! अब तू ज्ञानचक्षु खोलकर अपने चैतन्यपद को देख। अंतर में चैतन्यवस्तु सत् है, उसे तू देख।

66. अहा, चैतन्यपद एकबार जिसने अंतर में देखा, उसका चित्त जगत की किसी दूसरी वस्तु या परभाव में नहीं लगता, चैतन्य की सुंदरता के समक्ष रागादिभाव तो बिल्कुल शोभारहित अपदरूप हैं, शुद्ध चैतन्यपद में उनका प्रवेश नहीं है।

67. अहो, चैतन्य की सुंदरता को जाने, उसे राग का प्रेम कैसे रहे? कहाँ राग और कहाँ वीतरागता! चैतन्यतत्त्व तो रागरहित शुद्ध है, और राग अशुद्ध है। भाई, राग के वेदन से तो तू अनादिकाल से दु:खी हुआ है; एकबार रागरहित चैतन्य का स्वाद तो चख! चैतन्यस्वाद की मधुरता के पास राग का रस उड़ जायेगा। राग तो बिल्कुल नीरस लगेगा।

68. तेरा पद तो आनंद का धाम है। आनंदधाम में राग का क्लेश नहीं होता। राग के पद में तेरा पद नहीं है और तेरे चैतन्यपद में राग नहीं है। राग तो अपद है—अपद है!

69. राग स्वयं तो अन्धकार है, चैतन्यप्रकाश उसमें नहीं है; राग से भिन्न ऐसे चैतन्यपद को अनुभव में लेने पर आनंद सहित जो ज्ञानदोज उगी, वह अब वृद्धिगत होकर पूर्णिमारूप होगी अर्थात् केवलज्ञान होगा।—आत्मा में ऐसे भेदज्ञान की दोज प्रगट हुई, वह अपूर्व मंगल है।

[वैशाख शुक्ला तीज के सायंकाल स्वामीजी भावनगर से सोनगढ़ पधारे। अहा, आध्यात्मिक शांति की मधुर तरंगें उल्लसित होने लगीं... प्रिय विदेहीनाथ को देखकर चित्त शांत और प्रसन्न हुआ। सवेरे बम्बई, दोपहर को भावनगर और शाम को सोनगढ़—ऐसी शीघ्र यात्रा से थककर अब सोनगढ़ आने पर शांति हुई। स्वामीजी कई बार कहते हैं कि सोनगढ़ से बाहर जाना अब अपना काम नहीं है। सचमुच, परम निवृत्तिमय जीवन में अध्यात्मतत्त्व की गहरी भावनाएँ और विकसित हो जाती हैं।]

70. अरे भाई! राग के वेदन में तू दु:खी है; राग से भिन्न चैतन्य को जानकर उसके निर्विकल्प रस का पान कर! स्वसन्मुख होकर आत्मा का वेदन करने पर तेरी पर्याय में आनंदसागर का ज्वार आयेगा... और अपूर्व मोक्षसुख का अनुभव

होगा। अंतर में आनंद का समुद्र भरा है; उसके सन्मुख होकर उसे पर्याय में उल्लसित कर।

71. (मोक्षप्राभृत : गाथा 158) अज्ञानी (सांख्यमती आदि) एकांत ध्रुव वस्तु मानते हैं और जानने की क्रिया, परिणमन आदि को नहीं मानते।—आत्मा में एकान्त नित्यपना ही है और अनित्यपना नहीं है—ऐसा अज्ञानी मानते हैं। परंतु चैतन्यतत्त्व नित्य-अनित्य स्वरूप है, वह चेतनस्वभावरूप परिणमित होकर जानने की क्रिया करनेवाला है। यदि जानने की क्रिया न करे तो आत्मा जड़ हो जाये। जानने की क्रिया जिसमें है, वह चेतन है। जाननेरूप परिणमित होने की क्रिया (अनित्यता) जो अचेतन में मानते हैं, वे चेतन को अचेतन मानते हैं और अचेतन को चेतन मानते हैं। यह सिर्फ सांख्य की बात नहीं है, परंतु जिनका ऐसा अभिप्राय है, वे सब अज्ञानी हैं।

72. आत्मा को कभी पर्याय होती है ? आत्मा में अनित्यपना होता है ?—ऐसी शंका अज्ञानी करते हैं। भाई, ज्ञानपर्याय के बिना आत्मा नहीं होता। आत्मा और उसकी पर्याय भिन्न नहीं हैं। अनित्यपर्याय भी आत्मा का एक स्वभाव है। चेतन की क्रियारूप जो अनित्यपर्याय है, वह कहीं जड़प्रकृति का धर्म नहीं है, वह तो चेतन आत्मा का धर्म है।—ऐसे आत्मा को जो जानता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष भी पर्याय है। जो पर्याय को ही न माने, उसे मोक्ष कैसा ?

73. जो चेतन को चेतन जाने और अचेतन को अचेतन माने; चेतन के गुण-पर्यायों को चेतन में माने, जड़ के गुण-पर्यायों को जड़ में माने, वह ज्ञानी है; और वह जड़-चेतन को भिन्न जानता हुआ, पर्याय को अपने चेतनस्वभाव में एकाग्र करके मोक्ष साधता है; अन्य जीव मोक्ष को नहीं साधते।

74. आत्मा में पर्याय होती ही नहीं—ऐसा नहीं है; अथवा पर्याय वह उपाधि है—ऐसा भी नहीं है। शुद्ध पर्याय तो आत्मा का स्वरूप है, और वह तो सिद्ध भगवान को भी होती है। पर्याय में रागादि अशुद्धभाव हैं, वह उपाधि है, और उसका नाशा हो सकता है; उसका नाश होने पर आत्मा उसके बिना भी जीवित रह सकता है। परंतु अपनी शुद्ध पर्याय से रहित आत्मा नहीं होता।

75. ज्ञानी तो अपनी ज्ञानपर्याय को ज्ञान में ही एकाग्र करके, आनंद का अनुभव करते-करते मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिये सम्यग्ज्ञान और वीतरागचारित्र द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होता है। चारित्र के बिना कोई जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

76. शुद्धोपयोग में लीनतारूप तप मोक्ष का उत्कृष्ट साधन है। तीर्थंकर भगवान उसी भव में सिद्धपद प्राप्त करते हैं—यह बात ध्रुवरूप से निश्चित है, वे मति-श्रुत-अवधिज्ञान सहित हैं, तथापि चारित्रदशा प्रगट करके जब चैतन्यतत्त्व में लीन होते हैं, तभी मोक्ष को प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर भी चारित्रदशा के बिना मात्र ज्ञान से मोक्ष प्राप्त नहीं करते। इसप्रकार मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

77. हे जीव, तू प्रतिकूलता के बीच प्रयत्न द्वारा आत्मा की भावना भाना। चैतन्य की शांति के समक्ष बाह्य सुविधाओं में धर्मी को किंचित् भी सुख प्रतीत नहीं होता, इसलिये सुविधा मिटकर प्रतिकूलता आये, तथापि आत्मा की शांति नहीं छूटती। अनुकूलता और प्रतिकूलता के समय उसे ज्ञानभावना बनी रहती है। अनुकूलता में वह मूर्छित नहीं होता और प्रतिकूलता में घबराता नहीं है।

78. अहो, चैतन्य की भावना में जो सुख है, वह सुख किसी बाह्य सुविधा में नहीं है। इसलिये बाह्य परीषह भी आनंद से सहकर तू अपनी ज्ञानभावना में दृढ़ रहना। देह में पीड़ा का अवसर आये, योग्य आहार-पानी न मिले, देह में वेदना अधिक हो, बाह्य में निंदा और अपमान होता हो, ऐसे अवसर पर भी प्रयत्न द्वारा तू अपनी ज्ञानभावना में लीन रहना, केवल बातें बनाकर अटक नहीं जाना, परंतु ज्ञान को आत्मा की पर्याय में ऐसा परिणमित कर देना कि किसी भी प्रसंग में वह हटे नहीं, और चाहे जैसी प्रतिकूलता में भी वह व्याकुल न हो।

79. अहा, चैतन्यतत्त्व की भावना में जो शांति है, उसकी क्या बात! उसमें बाह्य अनुकूलता-प्रतिकूलता क्या करेगी? ऐसे चैतन्यतत्त्व की भावना करनेवाला जीव जगत से उदासीन होता है। ऐसे पराक्रमी जीव अंतर के उग्रध्यान द्वारा सुख के अनुभवपूर्वक मोक्ष को साधते हैं। इसलिये मुमुक्षु को तीव्र प्रयत्न द्वारा आत्म-भावना भाने का उपदेश है।

80. समयसार के 14वें कलश में कहा है कि—आत्मा के शुद्धस्वरूप का अनुभव, वह उपादेय है; और ऐसा अनुभव, वही आत्मा है। ऐसे शुद्धस्वरूप का अनुभव, वही सुख है, वही उत्कृष्ट है; अन्य सब हेय है।

81. अनुभवस्वरूप आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानरूप हुआ है, और वह असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक प्रदेश में एक समान परिणमित हो रहा है। ज्ञानपरिणमन आत्मा के सर्व प्रदेश में है। अनुभूति में आत्मा का कोई प्रदेश ज्ञानपरिणमन से खाली नहीं है, अनुभूति सर्व आत्मप्रदेशों में व्यापक है। आत्मा के प्रदेश सदा चेतनारस से भरपूर हैं, उन्हीं प्रदेशों में आनंद भरा है; अनंतगुण का रस सर्व आत्मप्रदेशों में भरा है। आत्मा ही उस-स्वरूप है।

82. ऐसा ज्ञानघन आत्मा ही मुमुक्षु को साध्य-साधकभावरूप से उपासना करनेयोग्य है। ज्ञानस्वरूप से भिन्न दूसरा कुछ उपासने योग्य नहीं है—मोक्ष के लिये यह महान जैन सिद्धांत है।

83. ऐसे आत्मा का अनुभव कैसे हो? स्वानुभवप्रत्यक्ष द्वारा आत्मा का अनुभव होता है; परोक्षज्ञान या राग द्वारा आत्मा का अनुभव नहीं होता।

84. आत्मा के अनुभव की इतनी महिमा क्यों करते हो? क्योंकि ऐसे अनुभव द्वारा ही साध्य आत्मा की सिद्धि होती है, अन्य किसी प्रकार आत्मा नहीं सधता अर्थात् जीव का दु:ख नहीं मिटता और सुख नहीं होता। सुख की प्राप्ति और दु:ख का नाश ऐसे आत्मा के अनुभव से होता है, इसलिये उसकी महिमा अपार है, उस अनुभव से उच्च दूसरा कोई नहीं है।

85. ऐसा अनुभव प्रदान करनेवाले एवं भव-भ्रमण के चक्र से छुड़ानेवाले पूज्य गुरुदेव को नमस्कार हो!

जय महावीर!

ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

सच्चा जीवन जीने की रीति

उपयोग जीव का जीवन है

[पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से]

आत्मा का स्वभाव सदा शुद्ध चेतना लक्षणरूप है, उस चेतना को ही भगवान ने शुद्ध धर्म कहा है। उसमें रागरूप भावकर्म नहीं है तथा जड़कर्म भी नहीं है। इसप्रकार कर्म से विमुक्त चेतनास्वरूप आत्मा का चिंतन-अनुभवन ही शुद्ध धर्म है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से देखने पर आत्मा सदा शुद्ध चेतनालक्षणसंपन्न है। ऐसे आत्मा के अनुभवरूप चेतना धर्म, वह मोक्षमार्ग है।

रागादि विकल्प में चेतना नहीं है और चेतना में रागादि नहीं है। रागादि आत्मा का लक्षण नहीं है। रागरहित आत्म-अनुभव संभव है परंतु चेतनारहित आत्म-अनुभव असंभव है।

—इस प्रकार स्पष्ट भेदज्ञान करके राग से भिन्न परिणमित हुई तो ज्ञानचेतना है, उसके द्वारा आत्मा लक्ष में आता है, और वह चेतना ही आत्मा का लक्षण है। ऐसे स्वधर्मरूप लक्षण द्वारा आत्मा लक्षित होता है—ऐसा जिनशास्त्र में सर्वज्ञदेव ने कहा है—

सर्वज्ञ ज्ञान विषै सदा, उपयोगलक्षण जीव है।
वो कैसे पुद्गल हो सके जो, तू कहे मेरा अरे!॥24॥

उपयोगलक्षण द्वारा अंतर में शरीर से विलक्षण अपने आत्मा को शोध, चैतन्यभाव में केलि करते हुए अपने सत्त्व को देखने पर तुझे महा आनंद होगा।

चेतना, वह आत्मा का वास्तविक स्वभावभूत धर्म है। रत्नत्रयधर्म का लक्षण भी चेतना है; चेतना के अनुभव में रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का समावेश है। मुक्ति, वह सर्व कर्म तथा राग से रहित चैतन्यदशा है, उस मुक्ति का उपाय भी शुभाशुभरागरहित तथा जड़कर्म के संबंधरहित शुद्ध चैतन्यभाव है।

शुद्धनय से आत्मा का स्वभाव सर्व कर्म से विमुक्त, उपयोगस्वरूप है, उसे जानकर

उससे एकाग्रता करने पर शुद्ध सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रगट हुआ, वह मोक्षमार्ग है। उसे शुद्धचेतना भी कहा जाता है। ऐसा धर्म, वह कर्म से छूटने का मार्ग है। ऐसी शुद्धात्मा की उपासना का अलौकिक वर्णन समयसार में है। अहा, समयसार में तो बहुत गंभीरता है।

मोक्ष के मार्गरूप जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह शुद्ध चेतनारूप है, रागरूप या देह की क्रियारूप नहीं है। ऐसी रत्नत्रयरूप शुद्ध चेतना, वह आत्मा का धर्म है, आत्मा का स्वभाव है। 'चेतना' को रत्नत्रयधर्म का लक्षण कहा है परंतु राग को लक्षण नहीं कहा; राग का तो उसमें अभाव है, इसलिये रत्नत्रय में कहीं राग नहीं आता। रत्नत्रय रागरहित है और वही मोक्ष का साधन है। ऐसा रागरहित रत्नत्रय, वही महावीर प्रभु का वीतरागमार्ग है, उसी मार्ग से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

देखो, मोक्षमार्ग में रत्नत्रय को रागरहित लिया है, और उसे चेतनाधर्म कहा है। व्यवहाररत्नत्रय में जो राग का मार्ग है, वह कहीं चेतना का धर्म नहीं है। राग, वह आत्मा का स्वभाव नहीं परंतु बंध का स्वभाव है, वह तो कर्म बाँधनेवाला है, वह कहीं जीव को कर्म से छुड़ानेवाला नहीं है। और चेतनारूप रत्नत्रयधर्म तो कर्म से विवर्जित है। पूजा-दान आदि के शुभराग को भगवान ने लौकिक धर्म कहा है, परंतु मोक्ष के कारणरूप परमार्थ धर्म वह नहीं है; परमार्थधर्म तो रागरहित है। ऐसे रागरहित रत्नत्रय की आराधना, वह महावीर प्रभु का मार्ग है। वह जैनशासन है।

जैनशासन में तीनों काल धर्म का ऐसा स्वरूप जानना चाहिये। भरत में, ऐरावत में या विदेहक्षेत्र में सदा ऐसा ही चेतनालक्षणरूप आत्मधर्म है। उसमें रत्नत्रय का समावेश है और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे मार्ग को पहिचानकर चेतना के अनुभव की निरंतर भावना करने जैसी है। वही अहिंसा धर्म की नींव है।

उपयोग ही आत्मा का जीवन है।

उपयोगस्वरूप की अनुभूति ही सच्चा जीवन है।

आयुकर्म के बिना जिया जा सकता है ?—हाँ।

सच्चा जीवन आयुकर्म के बिना ही जिया जा सकता है। अनंत सिद्ध भगवंत आयु के बिना ऐसा जीवन जीते हैं। जीव का प्राण चैतन्य है। (**आत्मद्रव्यहेतुभूत**

चैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः) चैतन्यमात्र भाव को धारण करके सदा जिये, ऐसी आत्मा की जीवत्वशक्ति है, इसलिये जीव सदा चैतन्य-जीवन से जीनेवाला है, आयुकर्म से नहीं।

यदि जीव आयुकर्म से जीता होता तो समस्त सिद्ध भगवंतों का मरण हो जाता।

आयु के अभाव में कहीं जीव का अभाव नहीं होता है।

इस चैतन्य-जीवन को जाने, उसे देहबुद्धि न रहे और मरण का भय मिट जाये।

जिसे आयुकर्म का अभाव हुआ, उसकी मृत्यु कभी नहीं होती।

क्या जीव आयुकर्म से जीता है ?—नहीं।

जिसे आयुकर्म नहीं, वह सदा जीवित है, उसका कभी मरण नहीं होता। जिसे आयुकर्म है, वह तो मरता है।

आयुकर्म के आधीन रहेगा तो तू मृत्यु को प्राप्त होगा।

आयुकर्म से पृथक् हो जा, तू सदा जीवित रहेगा।

आयुकर्म के बिना तू स्वाधीन उपयोग द्वारा जीनेवाला है।

अरे, तुझे अपने आत्मा का स्वाधीन जीवन जीना भी नहीं आया और आयुकर्म के आधीन रहकर तू अनंतबार मृत्यु को प्राप्त हुआ, दुःखी हुआ। अब देह और कर्म से रहित अपने स्वाधीन चैतन्य से जीवित रहना सीख तो कभी तेरा मरण नहीं होगा और अनंत काल सुखी जीवन व्यतीत करेगा।

इसलिये संत कहते हैं कि—उपयोगलक्षण जीव है, और वही सच्चा जीवन है।

सिद्ध भगवंत अमर हैं, उन्हें मरण क्यों नहीं ?

आयुकर्म का सर्वथा अभाव होने से उन्हें कभी मरण नहीं है। यदि जीव आयु से जीवित रहता हो तो आयु के अभाव में जीव का अभाव हो जाये। जीव तो आयुरहित अपने चैतन्यप्राण से जीता है—ऐसी उसकी जीवत्वशक्ति है। जहाँ चैतन्यभाव पूर्ण प्रगट हुआ, वहाँ अमर जीवन प्रगट होता है।

इसप्रकार चैतन्यमय वीतरागभाव, वह आत्मा का जीवन है।

अहिंसा, वह चैतन्यजीवन है। हिंसा, वह मरण है।

इसलिये हे भव्य जीवो! जिनसिद्धांत को जानकर वीतरागभावरूप परम अहिंसाधर्म का सेवन करो।

जय महावीर!

जीवन धर्म के लिये है—धन के लिये नहीं

यह अवसर स्वभावधर्म की साधना का है, धनवृद्धि का नहीं। इसलिये हे जीव! इष्ट ऐसा जो स्वभाव है, उसकी साधना का उद्यम कर... धनवृद्धि के लिये इस जीवन को व्यर्थ न गवाँ।

इष्ट उपदेश अर्थात् आत्मा के हित का उपदेश देते हुए श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि—अरे जीव! आत्मा के स्वभावधर्म की साधना करने का यह अवसर है। स्वभावसाधना के बदले धनवृद्धि के अर्थ इस अवसर को गवाँ देगा तो तेरा जैसा मूर्ख कौन होगा? तू दिन-रात धनवृद्धि के हेतु प्रयत्न करके पाप का बंध करता है, और स्वभावधर्म का साधन नहीं करता। आयु और पुण्य कम होता है, तथापि धन की वृद्धि से तू मानता है कि मैं बढ़ा हूँ। परंतु भाई, इसमें तेरा कुछ हित नहीं है। तेरा हित तो इसमें है कि तू अपने स्वभाव की साधना कर... आत्मा के मोक्ष के लिये प्रयत्न कर। यह भव, भव के अभाव के लिये है—ऐसा समझकर तू आत्मा के हित का उद्यम कर। ऐसा हितकारी इष्ट उपदेश संतों ने दिया है।

अरे, धन का लोलुपी मनुष्य अपने जीवन की अपेक्षा धन को प्रिय मानता है। समय व्यतीत होने पर धन का ब्याज बढ़ता है—ऐसी वह गिनती करता है, परंतु आयु कम होती जाती

है, उसका कोई विचार नहीं है। उसे धन इतना प्रिय है, जितना जीवन नहीं, इसलिये धन के हेतु वह जीवन व्यर्थ गँवा देता है। इष्ट ऐसे आत्मा को भूलकर जिसने धन या मान को इष्ट माना है, वह धन और मान के हेतु जीवन व्यतीत करता है; परंतु इष्ट तो मेरा ज्ञानस्वभावी आत्मा है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ मेरा इष्ट नहीं है—इसप्रकार जिसने आत्मा को इष्ट माना, वह जीव आत्मसाधना के लिये अपना जीवन अर्पित कर देता है। सच्चा इष्ट तो वही है कि जिससे भव-दुख मिटे और मोक्षसुख की प्राप्ति हो। ऐसे इष्ट को जो भूलता है, वही पर को इष्ट मानकर उसमें सुख मानता है और उसमें जीवन व्यतीत करता है। धर्मी को तो आत्मा का स्वभाव ही सुखरूप और प्रिय लगा है, 'जगत इष्ट नहिं आत्मसे'—इसप्रकार आत्मा को ही इष्ट मानकर उसकी साधना में जीवन व्यतीत करता है।

भाई, धन की इच्छा से अपने आत्मा को तू पाप के कीचड़ में न फँसा। अरे, धन उपार्जित करके फिर पूजा-प्रभावना-दानादि में देकर पुण्य करूँगा—ऐसी इच्छा से भी धन की लोलुपता न कर। अपनी वृत्ति को आत्महित में लगा, यही सबसे श्रेष्ठ है। धन प्राप्ति की इच्छा से तो तेरा आत्मा कीचड़ समान पाप से लिप्त होता है। अभी पाप करके फिर पुण्य करूँगा, ऐसा माननेवाला तो मूर्ख है। पहले शरीर पर कीचड़ लगाकर फिर स्नान करनेवाले की भाँति मूर्ख है। भाई, कीचड़ लगाकर फिर स्नान करना, इसकी अपेक्षा तो पहले से ही कीचड़ मत लगा। उसीप्रकार भविष्य में दानादि करेंगे—ऐसी आशा से आत्मा को सहज ही पापरूपी कीचड़ में क्यों लपेटता है? हाँ, तुझे पुण्ययोग से जो लक्ष्मी आदि की प्राप्त हुई हो, उसे दान-पूजा-साधर्मी-सत्कार आदि सत्कार्यों में लगा।

भाई, पापभाव तो किसी भी प्रकार इष्ट नहीं है। लक्ष्मी आदि प्राप्त करने की वृत्ति तो पाप है, उसे छोड़ और राग कम करके जैसे आत्मा का हित हो, वैसा कर। धनप्राप्ति के भाव में दुःख है, धन की रक्षा के भाव में दुःख है और धन के उपभोग के भाव में मात्र अतृप्ति और दुःख ही है। जिसमें सर्वत्र दुःख और आकुलता है, उसमें तेरा किंचित् हित नहीं है, तो कौन उसे इष्ट माने? हित तो आत्मसाधना में है, जिसके प्रारंभ में भी शांति और जिसके फल में भी मोक्षसुख की अपूर्व शांति है।—ऐसी मोक्षसाधना, वह आत्मा का इष्ट है। इसलिये उसका ही उद्यम कर—ऐसा संतों का इष्ट उपदेश है। ❀❀

आनंद से मनायें प्रभु के मोक्ष का महोत्सव

महावीर भगवान हमारे परम इष्टदेव हैं; उनके मोक्षगमन का यह ढाई हजारवाँ वर्ष सारा देश आनंदपूर्वक मना रहा है। अपने भगवान कितने महान हैं और उनका बतलाया हुआ मोक्षमार्ग कितना सुंदर है। उसकी महिमा 180 जिज्ञासु भाई-बहिनों ने निबंध द्वारा व्यक्त की है... उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

(निबंध - 2)

[अंक-366 से आगे]

[लेखक:—श्री ए.बी. नंदलाल तथा प्रज्ञाबहिन दामोदरदास गाँधी, बोटाद]

सारा भारतदेश आज अतिशय आनंद से दीपोत्सव मना रहा है। काहे का है यह मंगल-दीपोत्सव! महावीर प्रभु के मोक्ष का यह महोत्सव है।

अहो! अंतर से श्रद्धा की ध्वनि करता हुआ आत्मा जागृत हो जाये—ऐसा यह वीरमार्ग है। जिसप्रकार युद्ध करते हुए राजपूत की वीरता छुपी नहीं रहती, उसीप्रकार चैतन्य की साधना के पंथ पर चलनेवाले—वीरप्रभु के मार्ग पर चलनेवाले धर्मात्मा की वीरता छुपी नहीं रहती। उसका वैराग्य, उसकी श्रद्धा का बल, उसका धर्मप्रेम, उसका आत्मोत्साह मुमुक्षु से छुपा नहीं रहता। ज्ञानदशा वास्तव में अद्भुत है!

भगवान महावीर मोक्ष पधारे और भरतक्षेत्र को तीर्थंकर का विरह हुआ, तथापि उस मोक्ष का उत्सव ?—हाँ... परंतु वह कहीं भगवान के विरह का उत्सव नहीं है, वह तो मोक्षप्राप्ति का उत्सव है, उसमें अपने मनोरथ के प्रति उल्लास का आनंद है। सिद्धपद, वह साधक का मनोरथ है; उस सिद्धपद के स्मरणमात्र से भी साधक का अंतर पुलकित होता है तो भगवान के ऐसे सिद्धपद को देखकर आनंद क्यों न हो ? और उस सिद्धपद की अनुमोदना के रूप में वह उत्सव क्यों न मनाये ? उस साधक के ज्ञान में सर्वज्ञ का कभी विरह नहीं है।

इसप्रकार सिद्धपद का अभिनंदन करने और मोक्ष का उत्सव मनाने का 2500 वाँ महान वर्ष निकट जा रहा है। इसलिये हम भी रत्नत्रय के पवित्र दीपक प्रज्वलित करके यह मंगल पर्व

मनायें... और वीरप्रभु के मोक्षपथ पर चलें, यह हम सबका प्रथम कर्तव्य है। हमें चाहिये कि भगवान के मोक्षगमन के मंगल दिवस पर उच्च भावना भायें और धर्मवृद्धि के उच्च संकल्प करें। जैनधर्म की प्रभावना के लिये तथा परम देव, गुरु, शास्त्र को सेवा हेतु जो कुछ हो सके, वह तन-मन-धन से करें; किसी उत्तम नवीन शास्त्र के स्वाध्याय का मंगल प्रारंभ करें, सर्व साधर्मियों के साथ प्रेमसहित सम्मानपूर्वक हिलें-मिलें और धर्म की चर्चा करें। ऐसी श्रेष्ठ चर्चा करना चाहिये कि जिसके संस्कार जीवन में फैल जायें, उत्तम भावों की कमाई हो और ज्ञानलक्ष्मी का अपूर्व लाभ मिले।

प्रात:काल उठते ही मंगल-दीपकों की जगमगाहट में भगवान महावीर के गुणों का स्मरण करके, अपने कर्तव्यों का विचार करके, हमें भी उसी पंथ पर चलना है और उन्हीं जैसा होना है—ऐसा दृढ़ निर्धार करना चाहिये।

महावीर प्रभु हमारे चौबीसवें तीर्थंकर हैं... और तीर्थंकरदेव मात्र भारत की नहीं, सारे विश्व की विभूति है। भगवान का जन्म वैशाली नगरी में त्रिशलामाता के गर्भ से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। मात्र ब्यालीस वर्ष की आयु में भगवान केवलज्ञान प्रगट करके अरहंत हुए। तीस वर्ष तक धर्म का प्रवाह बहाने के पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान ने पावापुरी से मोक्ष प्राप्त किया। आज उनके निर्वाण को ढाई हजार वर्ष हो रहे हैं। भगवान का जन्म अनेक भव्य जीवों को तरने का कारण है, इसलिये वह कल्याणक है। इस भरतक्षेत्र का धन्य भाग्य है कि भगवान स्वयं तो पूर्ण परमात्मा हुए और जगत के अनेक जीवों को तारते गये। भगवान भव्य जीवों से कहते हैं कि भाई! चैतन्य की महिमा का मंथन करते-करते तेरे निर्णय में ऐसा आना चाहिये कि—अहा! यह मेरी वस्तु ही स्वयं परिपूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप है; ऐसे निर्णय से अंतर्मुख होने पर स्वसंवेदन द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता हो जाता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसा जीव पूर्णता के पथ पर चलने लगा, उसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया, वह महावीर के मार्ग पर आ गया।—ऐसा है महावीर का संदेश!

हे वीरनाथ भगवान! हमें महाभाग्य से पूज्य गुरुदेव द्वारा आपका सुंदर मार्ग प्राप्त हुआ है... आपके मार्ग में प्रवाहित वीतरागी आनंद के प्रवाह से हम पावन हुए हैं। अहा, आपकी सर्वज्ञता, आपकी वीतरागता और शुद्धात्मा के आनंद से भरपूर आपका उपदेश—ऐसी महानता को जो जानता है, वह तो आपके मार्ग में चलने लगता है और उसके चित्त में आप विराजते हो,

वही आपकी पूजा करता है। जो आपकी महानता को नहीं जानता, वह आपको कैसे पूज सकता है ? प्रभो ! हमने तो आपको जाना है और हम आपके पुजारी बनकर आपके मार्ग में आगे बढ़ रहे हैं।

पूज्य गुरुदेव वीरमार्ग की पहिचान कराते हुए कहते हैं कि—हम तो वीर की संतान हैं; 'जैसा पिता वैसा पुत्र', इसलिये हमें वीरप्रभु के वीतरागी मार्ग पर जाकर, उनके कहे हुए आत्मा की पहिचान करके उसे साधना है। आत्मा की अनुभवदशा द्वारा ही मोक्ष सधता है—यह वीर का मार्ग है और यह वीर का उपदेश है। ऐसे मार्ग को पहिचानकर जो उसे अपने में प्रगट करे, उसका अवतार सफल है। इसप्रकार मोक्षमार्ग की प्राप्ति, वह उनकी पहिचान से होनेवाला बड़े से बड़ा लाभ है।

पधारे कुन्दकुन्द भगवान,
साथ में अमृत-पद्म मुनिराज।

अहा, आज (फाल्गुन शुक्ला एकादशी को) परमागम मंदिर में कुन्दकुन्द प्रभु आकर विराजमान हुए हैं। ऊपर श्री महावीर स्वामी विराजमान हैं और नीचे उनकी दिव्यध्वनि को शास्त्ररूप गूँथकर कुन्दकुन्द प्रभु भव्य जीवों को निजवैभव की महान भेंट दे रहे हैं। साथ ही कुन्दकुन्द प्रभु के दो हाथ समान मुनिभगवंत श्री अमृतचंद्राचार्य तथा श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज भी परमागममंदिर में उनके दोनों ओर विराजे हैं।

हे चैतन्यवैभवधारी साधक संतों! आपको देखकर हमारे हृदय में जो अपूर्व आनंदसहित भक्ति की ऊर्मियाँ जागृत होती हैं, उन्हें तो आप स्वर्ग में बैठे-बैठे अपने दिव्यज्ञान द्वारा जानते ही हैं... इसीलिये यहाँ साक्षात् पधारकर आप हमें आशीर्वाद दे रहे हैं। गुरुदेव के हृदय में आपके प्रति जो अति उल्लास आता है—वह कैसा है ?—जैसा उल्लास आपके हृदय में सीमंधर प्रभु को देखकर आता था, वैसा ही उल्लास आज हमारे हृदय में आपको देखकर आता है।

प्रतिष्ठा-महोत्सव के प्रारम्भ में मंगल मंत्र-जाप की विधि द्वारा
प्रतिष्ठाचार्य पण्डित श्री मुन्नालालजी सामगौरया उत्सव का प्रारम्भ करा रहे हैं।

श्री बाबूभाई फतेपुरवाले तथा ब्रह्मचारी श्री धन्यकुमारजी बेलोकर आदि परमागम-मन्दिर में
विराजमान होनेवाले कुन्दकुन्दस्वामी के चरणकमलों का अवलोकन कर रहे हैं।

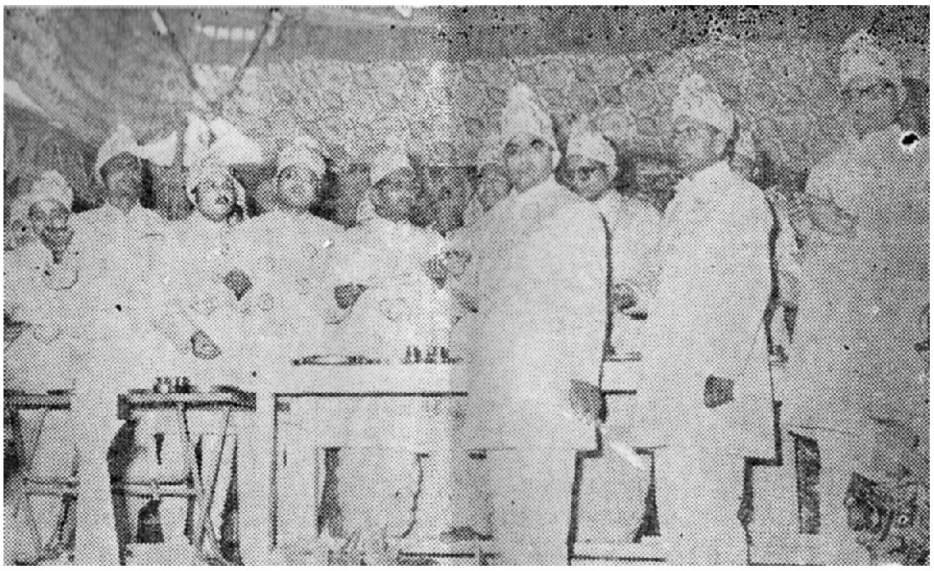

जी! हम सब प्रभु का महोत्सव मनाने के लिये अफ्रीका से आये हैं।

अहा, भगवान के पंचकल्याणक में सम्मिलित होकर हम धन्य हुए!

परमागम-मंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर कुन्दकुन्दस्वामी के चरणों का स्पर्श करने से उनकी वाणी सुनाई दे—ऐसी एक रचना की गयी थी। पूज्य स्वामीजी कुन्दकुन्दप्रभु के चरणस्पर्श करके उस रचना का उद्घाटन कर रहे हैं। चरणों का स्पर्श करने पर समयसार की ३१वीं गाथा सुनायी दी, जिसे स्वामीजी एकाग्रचित्त से सुन रहेहैं।

कुन्दकुन्द प्रभु के चरण-कमल।

परमागम-मंदिर तथा मानस्तंभ के ऊपर पुष्पवृष्टि का दृश्य

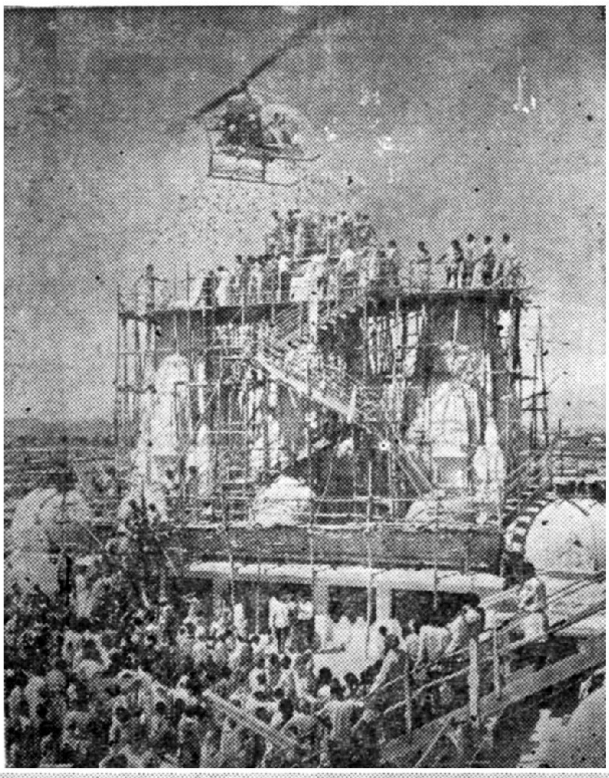

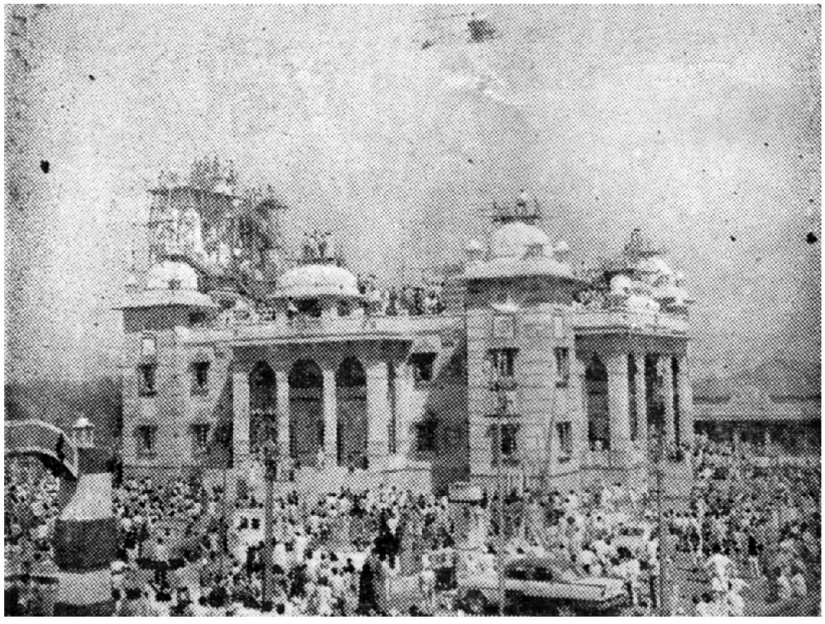

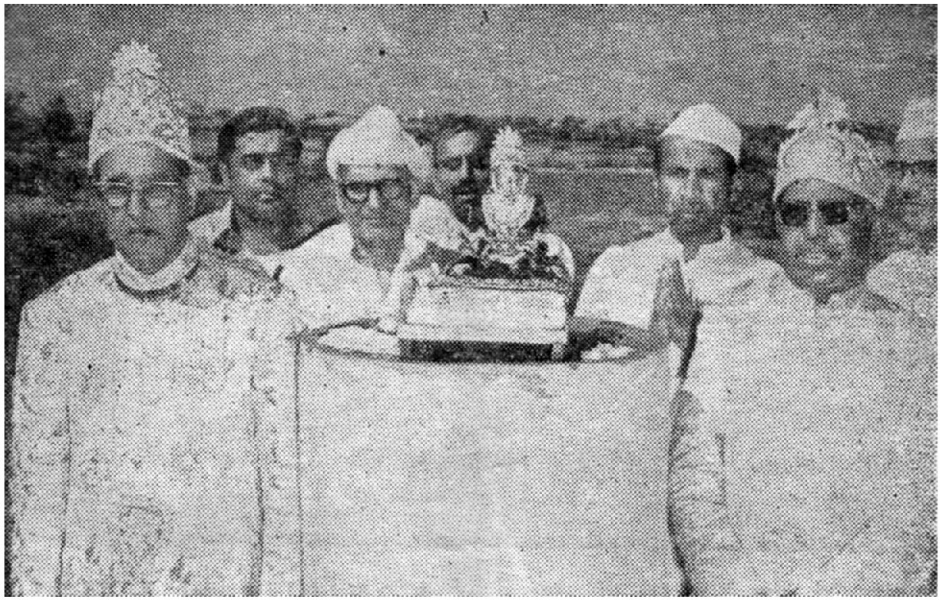

जन्माभिषेक की तृप्ति का अनुभव करते हुए सौधर्म और ईशान इन्द्र

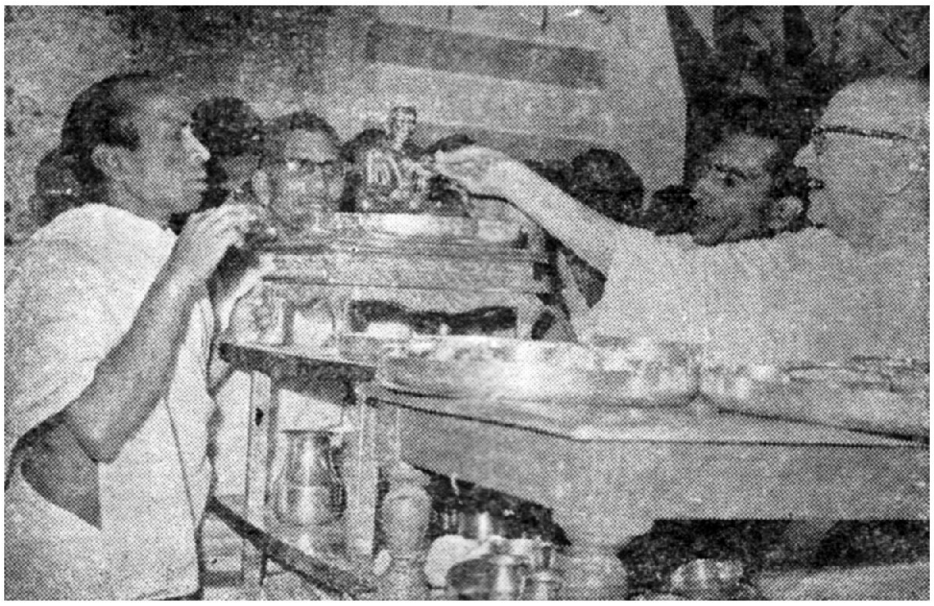

पूज्य स्वामीजी महावीर मुनिराज को प्रसन्न चित्त से आहारदान दे रहे हैं।

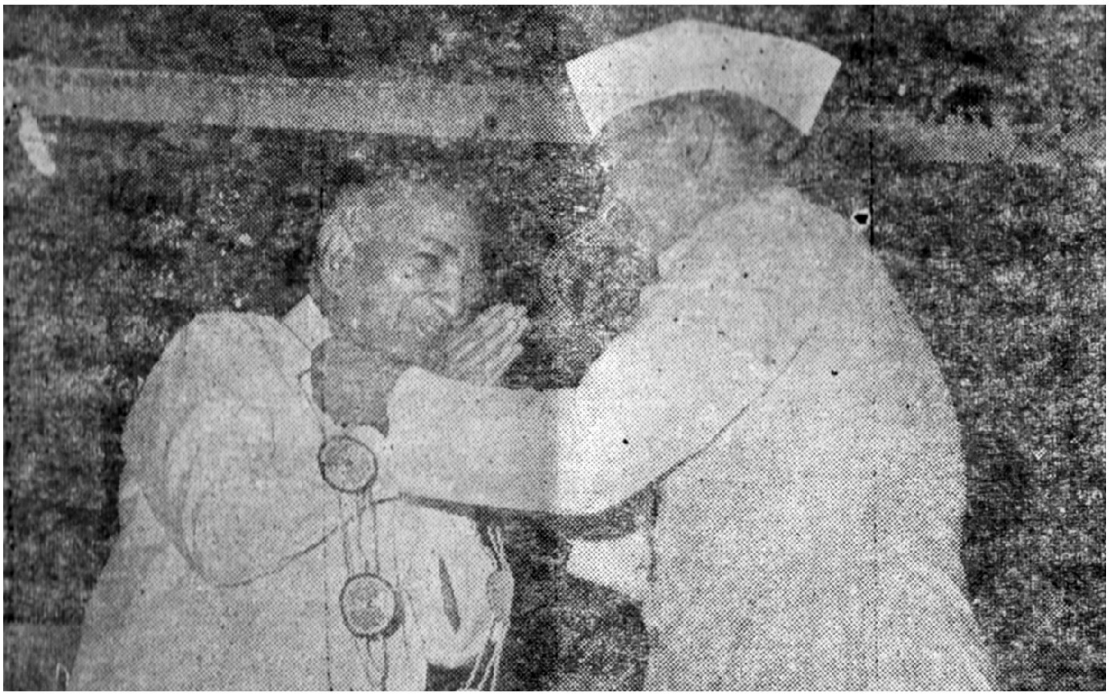

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नवनीतभाई साहू शान्तिप्रसादजी का स्वागत कर रहे हैं तथा साहूजी ट्रस्ट के भूतपूर्व अध्यक्ष माननीय श्री रामजीभाई को परमागम-मंदिर का चाँदी का प्रतीक अर्पण कर रहे हैं। उस अवसर पर माननीय श्री रामजीभाई के हृदयोद्‌गार आप सामने के पृष्ठ पर पढ़ें।

जा वानी के ज्ञानतैं सूझे लोकालोक;
सो वाणी मस्तक धरूँ, सवा देत हों धोक।

माननीय श्री रामजीभाई गद्‌गद् होकर भक्तिपूर्वक कहते हैं कि अहा, यह तो परमागम है, वह हाथ में नहीं मेरे सिर पर चढ़ाओ। साहू शान्तिप्रसादजी के सहारे जब ९१ वर्ष के वयोवृद्ध श्री रामजीभाई ने परमागम को सिर पर चढ़ाया; उस दृश्य को सभा आश्चर्य से देख रही है।

पूज्य स्वामीजी के शुभहस्त से परमागम-मंदिर के कलश पर मंगल स्वस्तिक

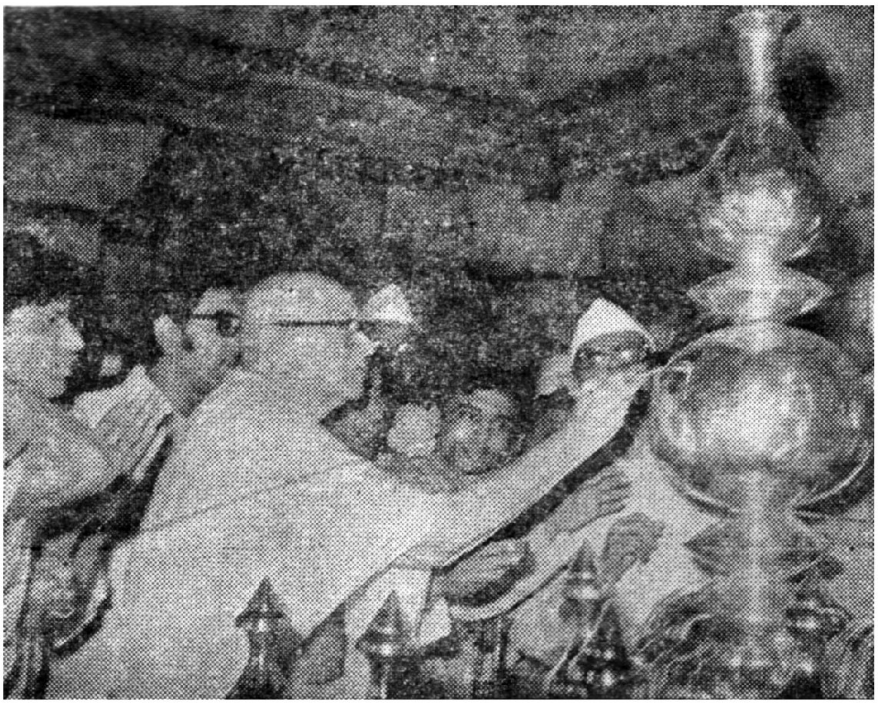

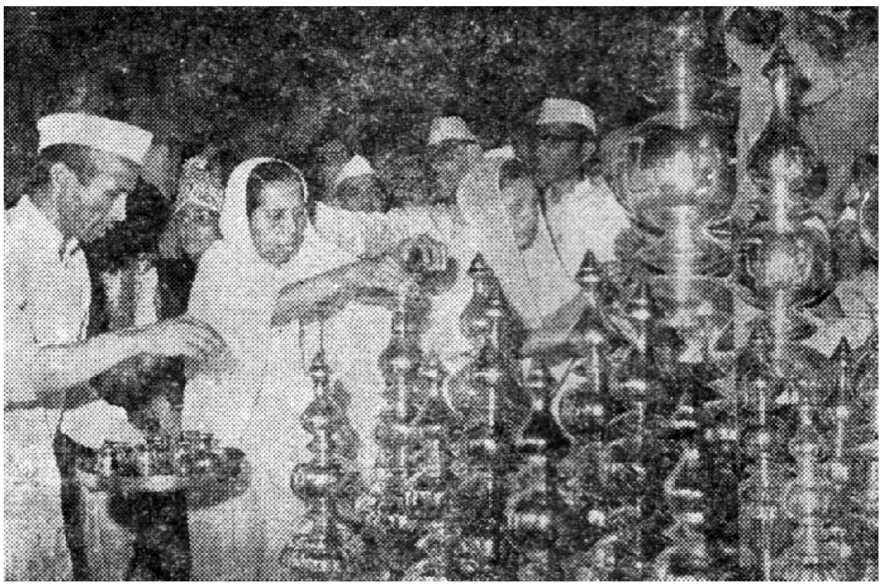

मंगल हाथों से कलशशुद्धि की विधि हो रही है।
यह सब कलश आज परमागममंदिर के ऊपर शोभायमान हैं।

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) :- पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। सवेरे श्री अष्टपाहुड के मोक्षपाहुड पर तथा दोपहर को श्री समयसार कलश-टीका पर पूज्य स्वामीजी के सुंदर आध्यात्मिक प्रवचन हो रहे हैं। जिनेन्द्र-पूजा एवं भक्ति आदि कार्यक्रम नियमित रूप से चलते ही रहते हैं।

बम्बई में पूज्य स्वामीजी की 85वाँ जन्मजयंती

वैशाख शुक्ला दोज को पूज्य स्वामीजी की 85 वीं जन्मजयंती बम्बई में उल्लासपूर्वक मनाई गई। पूज्य गुरुदेव बम्बई में 18दिन रहे। गुरुदेव के प्रवचनों की व्यवस्था धोबी तलाब के निकट क्रॉस मैदान में की गई थी। सवेरे तथा दोपहर को हजारों मुमुक्षु गुरुदेव के प्रवचनों का लाभ लेते थे। बाहर से भी अनेक मुमुक्षु बम्बई आये थे।

पूज्य गुरुदेव के निवास की व्यवस्था भाई श्री शांतीलाल चिमनलाल तथा भाई श्री मधुभाई चिमनलाल जवेरी के घर ('नीलाम्बर' बिल्डिंग में) हुई थी। इस अवसर का लाभ लेने हेतु श्री मधुभाई जवेरी अपनी पत्नी सहित हांगकांग से बम्बई आये थे। दोनों भाईयों ने तथा उनके समस्त परिवार ने बड़े ही उत्साहपूर्वक पूज्य गुरुदेव की सेवा का लाभ लिया था और अपने घर में पूज्य गुरुदेव के पदार्पण से अपने को धन्य मानते थे।

वैशाख शुक्ला दोज के प्रात:काल 5 बजे क्रॉस मैदान के सुसज्जित मंडप में गुरुदेव की जन्म-बधाई का कार्यक्रम था। हजारों भक्तजनों ने श्रीफल देकर आनंदपूर्वक गुरुदेव का अभिनंदन किया। चारों ओर मानों धर्म का उद्यान खिला हो, ऐसे सुशोभित मंडप में विराजमान गुरुदेव तो धर्म के कल्पवृक्ष समान शोभित होते थे; और हजारों भव्य जीवों के समूह उस कल्पवृक्ष के मधुर फल चखने आ रहे थे। उस समय ऐसा वातावरण था मानों दौड़धूपवाली बम्बई नगरी में नहीं किंतु चेतन की किसी शांतनगरी में बैठे हों! प्रात:काल 5 बजे सारा बम्बई

शहर शांत निद्राधीन था, मात्र भक्तजन जाग रहे थे और गुरुदेव का जय-जयकार सुनायी देता था। उस समय का शांत वातावरण जगत से कहता था कि हे जीवो! जीवन की दौड़धूप से थककर यदि आत्मशांति की इच्छा हो तो सत्पुरुष की शरण में आकर जैनधर्म का सेवन करो। अनेक भक्तों ने अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं तथा बम्बई मुमुक्षु मंडल की ओर से गुरुदेव को अभिनंदन-पत्र दिया गया। हजारों मुमुक्षुओं ने पचासी रुपये की रकम देकर अपना उल्लास व्यक्त किया था।

बम्बई नगरी में आनंदपूर्वक जन्मोत्सव के पश्चात् दूसरे दिन पूज्य गुरुदेव विमान द्वारा बम्बई से भावनगर होकर सोनगढ़ पधारे। सोनगढ़ की ओर दौड़ती हुई मोटर में बैठे-बैठे दूर से परमागममंदिर के तीनों उच्च शिखरों पर लहराती हुई ध्वजायें रत्नत्रयमार्ग की सुंदर प्रेरणा दे रही थीं... बस, अब संसार से छूटकर मानों रत्नत्रय के स्वधाम में आ गये, ऐसे संतुष्ट भाव की झलक पूज्य गुरुदेव के मुख पर दिखायी देती थी। गुरुदेव के पधारने से सुवर्णधाम के सुप्त वातावरण में मानों नवचेतना का संचार हुआ। प्रवचनों में शांतरस झर रहा है और पूज्य गुरुदेव बारंबार कहते हैं कि यहाँ तो अब शांतिपूर्वक स्वाध्याय का काल है! अहा, यह आत्मा को साध लेने का अवसर है।

गढडा (सौराष्ट्र) में नूतन जिनमंदिर तैयार हुआ है, उसमें जिनेन्द्रदेव की वेदी-प्रतिष्ठा ज्येष्ठ कृष्णा 2 के दिन हुई। इस अवसर पर पूज्य स्वामीजी 4 दिन के लिये गढडा पधारे थे। पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिष्ठा पूज्य गुरुदेव के शुभहस्त से नैरोबी (अफ्रीका) निवासी श्री जेठालाल देवराजभाई ने कराई थी। गुरुदेव के पूर्वज गढडा में रहते थे और वही उनकी ननिहाल का गाँव है। सारी विधियाँ आनंदपूर्वक हुई थीं; पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का लाभ हजारों जैन-अजैन जनता ने लिया था। पूज्य गुरुदेव ज्येष्ठ कृष्णा तीज के दिन सोनगढ़ आ गये हैं और अब सोनगढ़ ही रहेंगे।

परिस्थिति अनुसार इस बार सोनगढ़ में ग्रीष्मकालीन शिक्षण-शिविर नहीं लगेगा; वैसे यहाँ पानी आदि की जरा भी कठिनाई नहीं है।

—: नये प्रकाशन :—

— **श्री नियमसारजी शास्त्र :-** (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित) (तृतीय आवृत्ति) 11वीं शती के अध्यात्मरस के कवि शिरोमणि श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिवरकृत संस्कृत टीका का अक्षरशः प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद। पृष्ठ संख्या 415, क्राउन 8पेजी साइज में कपड़े की सुंदर जिल्द, मूल्य मात्र 5.50 पैसे, पोस्टेज अलग। यह पुस्तक जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन से भी मिल सकेगी।

— **छहढाला (सचित्र) :-** 10 वीं आवृत्ति। श्री पंडित दौलतरामजी कृत। यह पुस्तक जैन समाज में पाठ्य-पुस्तक के रूप में अति प्रचलित है। पंडितजी ने इसमें जैन तत्त्वज्ञान को गागर में सागर की भाँति भर दिया है। पृष्ठ संख्या 210, मूल्य मात्र 1.00 कमीशन नहीं दिया जाता।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

चैतन्यनिधान बतलाते हुए स्वामीजी प्रमोदपूर्वक कहते हैं कि अहा, जिस पर दृष्टि पड़ते ही आत्मा जागृत हो उठे और आनंद की लहरें उठें, ऐसा चैतन्यतत्त्व तू स्वयं है। तो अब तुझे जगत में किसकी इच्छा? अपने में ही दृष्टि कर। निजवैभव पर दृष्टि करने से तू निहाल हो जायेगा।

हे जीव!

यदि तुझे आत्मार्थ साधना हो तो तू जगत की चिंता छोड़ दे। तू जगत के समक्ष देखकर न बैठ! जगत का चाहे जैसा हो, तू तो अपने आत्महित के मार्ग पर निःशंक रूप से चलता रह।

—: आत्मधर्म के ग्राहकों से... :—

प्रिय महानुभाव ! आपका प्रिय आध्यात्मिकपत्र अब तीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है।

यह नये वर्ष का पहला अंक भेजा जा रहा है। आत्मधर्म प्रत्येक महीने की 25 तारीख को पोस्ट होता है। नये वर्ष का चंदा 4.00 चार रुपये मनीऑर्डर से भेजते समय अपना पूरा नाम और पता जिला-तहसील के साथ स्पष्ट अक्षरों में लिखें। जिससे आपको अंक नियमित मिलता रहे।

(1) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती।

(2) यदि आप पुराने ग्राहक हैं तो कृपया ग्राहक नंबर स्पष्ट अक्षरों में लिखें।

(3) एक बार में सिर्फ एक ही वर्ष का चंदा लिया जाता है। इसलिये चंदा 4.00 चार रुपये ही भेजें। यदि अंक आपको 10 दिन के अंदर न मिले तो कृपया हमें सूचित करें और अपना पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। हम आपको दूसरा अंक भिजवा देंगे। अपने स्नेही-मित्रों को भी आत्मधर्म का ग्राहक बनायें।

मैनेजर,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (भावनगर-सौराष्ट्र)

—: सूचना :—

सोनगढ़ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर जिन साधर्मी भाइयों ने बोली या तीर्थरक्षा फंड के लिये दान की घोषणा की थी, उनसे अनुरोध है कि वे दान की रकम का ड्राफ्ट, बैंक ऑफ इंडिया, सोनगढ़ अथवा भावनगर के किसी भी बैंक का ड्राफ्ट भेजें। नीचे लिखे हुए दो नाम में से किसी एक नाम का ड्राफ्ट भेजें—

(1) श्री परमागममंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति, सोनगढ़

(2) श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, बम्बई

प्रतिष्ठा-महोत्सव का हिसाब पूरा करना है, अतः आपसे दान की रकम शीघ्र भेजने का अनुरोध किया जाता है।

पता:—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) 364250

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302004 (राज०)

प्रशिक्षण-शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा संचालित धार्मिक प्रशिक्षण-शिविर छिंदवाड़ा समाज के आमंत्रण पर छिंदवाड़ा (म.प्र.) में दिनांक 25 मई से 13 जून, 1974 तक होने जा रहा है, जिसमें बालबोध पाठमालाओं व वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं की शिक्षण-विधि में अध्यापक बंधुओं को प्रशिक्षित किया जायेगा।

प्रशिक्षण-शिविर के अवसर पर श्रीमान् विद्वद्वर्य पंडित खेमचंदभाई सोनगढ़, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, श्री नेमीचंद पाटनी आगरा, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल जयपुर, पंडित रतनचन्द शास्त्री विदिशा एवं अनेक और भी विद्वान पधारेंगे, जिनके प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा। कृपया, अपने आने की सूचना निम्न पते पर भेजें:—

श्री प्रबोधचंदजी जैन, एडवोकेट, गोलगंज, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की ग्रीष्मकालीन परीक्षा 12 जून 1974 को होगी, जिसका कार्यक्रम निम्नानुसार है:—

प्रात:काल	सायंकाल
बालबोध पाठमाला, भाग-1	बालबोध पाठमाला, भाग-2
बालबोध पाठमाला, भाग-3	वीतराग-विज्ञान पाठमाला, भाग-1
वीतराग-विज्ञान पाठमाला, भाग-2	वीतराग-विज्ञान पाठमाला, भाग-3

नोट - ध्यान रहे ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं में उक्त पुस्तकों के अलावा अन्य किसी विषय की परीक्षाएँ नहीं होंगी।

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल

रजिस्ट्रार

परस्पर अभिनंदन (तीर्थरक्षा फंड)

श्री पूरणचन्दजी गोदीका और श्री साहू शान्तिप्रसादजी

सोनगढ़ में परमागममंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर तीर्थरक्षा फंड की घोषणा की गई; उस अवसर पर सेठश्री साहू शांतिप्रसादजी तथा श्री गोदिकाजी एक-दूसरे का अभिनंदन कर रहे हैं। तीर्थरक्षा फंड के लिये अच्छी धनराशि एकत्र हुई; परंतु इस संबंध में अनेक साधर्मियों का ऐसा विचार है कि जब एक अखिल भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थरक्षा कमेटी कार्य कर ही रही है, तब उसके अंतर्गत रहकर कार्य करना अच्छा है। समस्त दिगंबर जैनसमाज के तीर्थ एक ही हैं-तो उनकी रक्षा के लिये फंड भी एक होना चाहिये—वह योग्य है। हाँ, उस तीर्थक्षेत्र कमैटी में अपने सौराष्ट्र-गुजरात के सदस्य भी भाग लें, वह योग्य है। सौराष्ट्र में प्रथम गिरनार तीर्थक्षेत्र पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। नेमिनाथ प्रभु के मोक्षगमन की पाँचवीं टोंक तथा प्रभु के दीक्षा और केवलज्ञान का स्थान सहस्त्र-आम्रवन धीरे-धीरे जैनों के हाथ से निकल न जाये, इसलिये श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों जैन समाजों को साथ मिलकर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। [-संपादक]

भावना सफल हुई!

सुनहरा जीवन

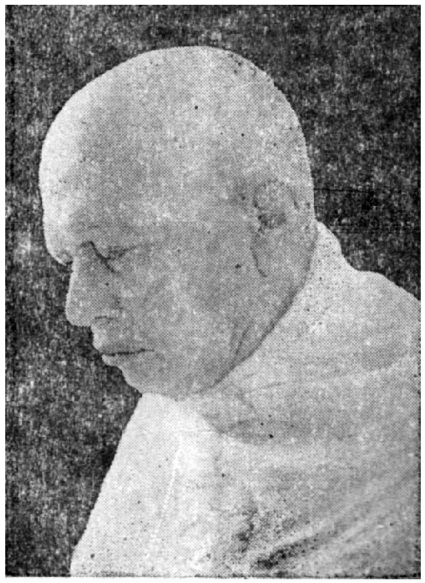

सुनहरा अवसर

हे गुरुदेव! आपकी वैशाख शुक्ला दोज यह सुनहरा दिन है। आपका सुनहरा जीवन वह हमें आत्मिकसाधना के लिये श्रेष्ठ उदाहरण दे रहा है। तीर्थंकर-गणधर-चक्रवर्ती आदि पुराणपुरुषों का पावन जीवनचरित्र, और उनके द्वारा पूर्वभवों में की गई आत्मसाधना, शास्त्रों में उसका वर्णन पढ़कर भी मुमुक्षु को कैसा आह्लाद होता है!! तो ऐसे आत्मसाधनावंत जीवों का जीवन प्रत्यक्ष देखने को मिले इतना ही नहीं, निरंतर उनका सहवास मिले, तो मुमुक्षु के आह्लाद का क्या कहना! हे गुरुदेव! आपके प्रताप से हमें ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है... इसलिये हम तो ऐसा ही समझते हैं कि आपकी शीतल छाया में हमें आराधना का ही सुंदर अवसर प्राप्त हुआ है। आपके चरणों में आराधना प्राप्त करके हम अपना जीवन उज्ज्वल करें और इसप्रकार आपका मंगल-जन्मोत्सव मनायें-ऐसी भावनापूर्वक आपको नमस्कार करते हैं।

(वीर सं. 2492 के आत्मधर्म से)

[अहा, आठ वर्ष पूर्व की हार्दिक भावना सफल हुई!] [सम्पादक]

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)